

चतुर्थ अध्याय

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित राजनैतिक जीवन

- i) समाज में स्वशासन की परिकल्पना
- ii) क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न
- iii) क्षेत्रीय राजनीति बनाम राष्ट्रीय राजनीति

i) समाज में स्वशासन की परिकल्पना

स्वशासन का अर्थ है अपना शासन। जहाँ अपना राज हो, अपना शासन हो, वहाँ स्वशासन होता है। जो किसी के अधीन न हो, स्वाधीनता पूर्वक जीवन व्यतीत करे, वह स्वशासन के अंतर्गत आता है। अंग्रेजी में इसे सेल्फ गवर्नमेंट भी कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत एक विशिष्ट क्षेत्र में अपनी राजनीतिक व्यवस्था होती है जिस पर किसी वाह्य जगत का कोई अधिकार नहीं होता है, केवल अपनी स्वायत्त शासन व्यवस्था कार्य करती है। आदिवासी स्वशासन से तात्पर्य है - 'अबुआ दिसुम अबुआ राज' अर्थात् अपना (हमारा) देश, अपना (हमारा) राज। जल-जंगल-जमीन पर आदिवासियों का अधिकार रहा है। उनके पुरखों ने अत्यंत परिश्रम से सघन वन को निवास स्थल में परिवर्तित किया। कृषि योग्य भूमि उपजाया, अपनी सामाजिक व्यवस्था निर्मित की तथा राजनीतिक स्वायत्त सत्ता को स्थापित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि अनादिकाल से आदिवासी अपने स्वशासन में जी रहे हैं जहाँ उनके अधिकार, स्वतंत्रता, अस्तित्व, हित सब कुछ सुरक्षित थे। प्रकृत प्रदत्त संसाधनों पर उनका ही अधिकार था। यद्यपि उन्होंने कभी आधिकारिक तौर पर प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं किया, किन्तु प्रकृति की संतान होने के नाते और उन संसाधनों के संरक्षक होने के आधार पर जल-जंगल-जमीन पर उनका ही अधिकार है। यह तभी संभव है जब तक उनका स्वशासन बना रहे। "स्वतंत्र और स्वशासी लोकतंत्र महज एक व्यवस्था का नाम नहीं है, बल्कि वह एक संस्कृति है। लोकतंत्र की संस्कृति और संस्कृति में लोकतंत्र अगर सीखना हो तो भारत सहित दुनिया के उन तमाम आदिवासी-मूलवासी की ओर झाँकना पड़ेगा, जो पिछले हजारों वर्षों से अपने लोकतंत्र की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं।"¹

आदिवासी समाज के स्वशासन का मजबूत स्तंभ है सामूहिकता जिस पर पूरा आदिवासी समाज टिका हुआ है। समय किसी के लिए ठहरता नहीं है। अतः समय की गति के अनुसार आदिवासी स्वशासन की नीति में परिवर्तन आए। किन्तु उनकी स्वशासन व्यवस्था समाप्त नहीं हुई, बल्कि उन परिवर्तनों को आगे बढ़ाते हुए आदिवासियों ने अपनी स्वायत्तता को बरकरार

रखा। चूंकि यह समाज एक लोकतांत्रिक समाज रहा है और प्रकृति का संरक्षण इन्हें प्राप्त हुआ है, तो इनकी स्वशासन व्यवस्था आडम्बरहीन रहते हुए प्राकृतिक स्वरूप लिए हुए है। प्रत्येक आदिवासी ग्राम में ग्राम सभा होती है। ग्राम सभा का कार्य होता है दैनिक क्रियाकलापों पर नियंत्रण। आदिवासी समाज के अन्तर्गत कई समुदाय हैं जैसे संताल, हो खड़िया, मुंडा आदि और इनकी अपनी परंपरागत स्वशासन प्रणाली रही है। आगे विभिन्न आदिवासी समुदायों की स्वशासन प्रणाली की चर्चा की जाएगी।

संताल आदिवासी समुदाय

प्रत्येक आदिवासी समुदाय में प्रधान होता है। संताल इन्हें 'मांझी' कहते हैं। मांझी का कार्य होता है प्रशासनिक और न्याय से संबंधित मामलों को देखना। इसके अतिरिक्त कर अथवा लगान वसूल करने का उत्तरदायित्व भी मांझी को ही प्राप्त है।

प्रधान पद के पश्चात् संतालों में 'परानीक' पद प्रमुख रूप से आता है। इन्हें 'उप-मांझी' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'परानीक' दंड विधान का कार्य भार ग्रहण करता है और उसे पूरी ईमानदारी से निभाता भी है। जितने भी अपराध होते हैं, उनके लिए दंड-विधान परानीक ही तय करता है।

मांझी के संदेश को जनता तक पहुँचाना, उसे जन-सुलभ बनाना 'गोड़ेत' का कार्य है। गाँव में जब भी कोई विशेष प्रयोजन से बैठक बुलाई जाती है अथवा कोई पर्व-त्योहार की जानकारी हो, तो इसकी सूचना देने का कार्य गोड़ेत करता है। खजांची (विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान जैसे पूजा-अर्चना) का कार्य भी गोड़ेत करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूचनावाहक का कार्य गोड़ेत करता है।

'जोग-मांझी' का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। शादी-विवाह के मामलों की देख रेख जोग-मांझी करता है तथा शादी-विवाह की समस्याओं एवं विवादों का निर्णायक भी वही होता है। समस्त युवा वर्ग की अगुवाई जोग-मांझी करता है। अगुवाई करने के साथ-साथ उस पर

एक भार होता है कि वह विवाह, पर्व-त्योहार पर निगरानी रखे। वह मांझी का उप सचिव होता है।

जोग-मांझी के बाद 'जोग परानीक' पद आता है। जब जोग-मांझी किसी कारणवश उपस्थित नहीं होता है तो जोग परानीक उसके स्थान पर कार्यभार संभालता है। जोग परानीक एक प्रकार से उप जोग-मांझी कहलाता है।

गाँव में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो सम्माननीय तथा सज्जन होते हैं। ऐसे व्यक्ति को सभा में उपस्थित होना होता है ताकि विचार-विमर्श में भाग ले सके। ऐसे व्यक्ति 'भोगदो प्रजा' कहलाते हैं। हर टोले में एक या दो भोगदो प्रजा रहते हैं। वे वृद्ध भी हो सकते हैं क्योंकि वृद्ध पुरुष सबसे अधिक अनुभवी, सम्माननीय तथा अपनी सूझ-बूझ से प्रत्येक मामले को समझ कर अपने मूल्यवान विचार प्रस्तुत करते हैं। इनके विचारों को कम नहीं आँका जाता है।

एक सुदृढ़ न्याय व्यवस्था के लिए आवश्यक है विश्वासपात्र का होना जिस पर पूर्णतः विश्वास किया जाए तभी न्याय व्यवस्था सफल होती है। मांझी का सबसे करीबी व्यक्ति 'लासेर टेंगोचू' ही है। वह कुल्हाड़ी-सा तेज होता है तथा सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है उसका बहिर्मुखी होना।

गाँव के आंतरिक देवी-देवताओं तथा विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानादि से संबंधित कार्यों का दायित्व 'नायके' पर होता है। पूजा-पाठ, अर्चना आदि नायके के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं तथा न्याय व्यवस्था के अंतर्गत धार्मिक मामलों का हल अथवा समाधान अपने निर्णय के रूप में देता है।

जिस प्रकार नायके गाँव के अन्दर धार्मिक अनुष्ठानादि से संबंधित कार्य करता है, उसी प्रकार 'कुड़ाम नायके' गाँव के बाह्य देवी-देवताओं की पूजा करता है।

जब किसी विवाद अथवा समस्या का समाधान अथवा निर्णय मांझी करने में असमर्थ होता है तो उसके स्थान पर 'देस-मांझी' या 'मौंडे मांझी' उस विवाद का निपटारा करता है।

इसकी नियुक्ति परगना द्वारा की जाती है। अगर कोई मसला मांझी सुलझाने में असमर्थ होता है तो उस मसले का हल देस-मांझी करता है।

पन्द्रह से बीस गाँव के बीच 'परगनैत' होता है। जब किसी समस्या का समाधान देस मांझी नहीं कर सकता है तो उसके स्थान पर उस समस्या का समाधान परगनैत करता है।

सभा को व्यवस्थित ढंग से चलाने का कार्य 'सुसारिया' करता है। चौकीदार अपराधी को किसी अपराध के लिए पकड़कर लाता है और मांझी के आदेशानुसार उसे प्रस्तुत करता है।

'दिसोम परगना', परगनैत का सहायक होता है। जो कार्य अथवा मामला परगनैत द्वारा संभव नहीं, उस कार्य को दिसोम परगना सम्पन्न करता है।

'लो-बीर' का आयोजन वर्ष में एक बार शिकार के लिए किया जाता है।

'बिटलाहा' संताली स्वशासन व्यवस्था के अन्तर्गत आता है। बिटलाहा संताली शब्द है जिसका अर्थ है समाज से बहिष्कृत करना। यह एक प्रकार का दंड है तथा ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब एक संताल युवक या युवती किसी अन्य समुदाय की युवती अथवा युवक से विवाह संबंध बनाता है।

पहाड़िया क्षेत्र

पहाड़िया क्षेत्र में निवास करने वाले पहाड़िया आदिवासी समुदाय की अपनी स्वशासन पद्धति आदिकाल से रही है। पहाड़िया समुदाय प्रधान को 'मांझी' कहते हैं। इनमें मांझी, गोड़ेत और नायके का वही कार्यभार और दायित्व होता है जैसा कि संताल आदिवासी समाज में देखा जाता है। सरदार या नाईब का स्थान महत्वपूर्ण होता है। ब्रिटिश शासन व्यवस्था के समय से ही इस व्यवस्था को स्वीकृति प्राप्त है जो आज भी जारी है।

इनके और संतालों की स्वशासन व्यवस्था में काफी साम्यता दिखाई पड़ती है। पहाड़िया आदिवासी समुदाय में लड़की को अपने पिता की संपत्ति (जमीन) का हिस्सा नहीं मिलता है,

किन्तु यदि लड़की ने विवाह न किया हो अथवा तलाकशुदा हो तो पैतृक संपत्ति में से कुछ हिस्सा उसे दे दिया जाता है, तब तक जब तक उसका विवाह अथवा पुनर्विवाह न हो जाए। उस भूमि पर खेती कर सकती है तथा अपना जीवनयापन कर सकती है। जब भी कोई विवाद उत्पन्न होता है तो सबसे पहले टोला स्तर के कुछ अनुभवी एवं बुजुर्ग द्वारा मामले का हल निकालने का प्रयास किया जाता है। यदि इस प्रकार विवाद या मसले का हल निकलता है तो गाँव के प्रधान मांझी के सम्मुख उक्त विवाद को प्रस्तुत किया जाता है। यदि यह मांझी द्वारा भी संभव नहीं हो पाता है तो यह विवाद सरदार तक पहुँचा दिया जाता है। सरदार निश्चित किए गए दिन पर सभा में बैठक बुलाता है। उस दिन गाँव के अन्य मांझी भी सम्मिलित होते हैं।

कोल्हन क्षेत्र

पूर्वी और पश्चिमी सिंहभूम जिला कोल्हन क्षेत्र कहलाता है जहाँ आदिवासी बहुल समाज के 'हो' समुदाय निवास करते हैं। इन्होंने सदैव से स्वशासन व्यवस्था की परंपरा का निर्वाहन किया है तथा अंग्रेजों की सत्ता के पश्चात् भी उनकी यह परंपरागत न्याय व्यवस्था कायम रही।

'हो' समुदाय के गाँव का प्रधान 'मुंडा' होता है। मुंडा का कार्य होता है प्रशासनिक और न्याय से संबंधित मामलों को देखना।

मुंडा (प्रधान) के सहायक के रूप में 'डाकुआ' होता है। यह मुंडा (प्रधान) का संदेश जनता तक पहुँचाने का कार्य करता है। जब भी किसी मामले की बैठक होती थी तो डाकुआ ही मुंडा के आदेश पर लोगों को सूचना प्रदान करता है।

गाँव के क्षेत्रीय पंचायत 'पीड़' का प्रधान 'मानकी' होता है। पन्द्रह से बीस गाँव के जितने भी मुंडा होते हैं, उनके ऊपर एक मानकी होता है। एक पीड़ के तहत पाँच से लेकर बीस गाँव आते हैं जो मुंडा मानकी के अंतर्गत आते हैं।

मानकी की सहायता करने के लिए 'तहसीलदार' होता है। तहसीलदार विभिन्न मुंडाओं से लगान की वसूली करता है।

जो विवाद अथवा मामले को मानकी सुलझाने में असमर्थ होता है तब उस मामले की जाँच-पड़ताल एवं विचार विमर्श करके 'तीन मानकी' उस मामले का हल निकालते हैं।

गाँव में धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ इत्यादि कार्य 'दिउरी' करता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक रीति के विरुद्ध कोई कार्य करता है तो वह दंड का भागी बनता है और दिउरी उस आरोपी व्यक्ति को दंड देता है।

'यात्रा दिउरी' 'दिउरी' के साथ धार्मिक मामलों पर मिलकर विचार विमर्श में सम्मिलित होकर अपनी भागीदारी निभाता है।

'मुंडा-मानकी' का संबंध बहुत महत्वपूर्ण होता है। 'हो' समुदाय में 'मुंडा-मानकी' प्रणाली ही प्रचलित रही है। मुंडा मानकी के अन्तर्गत रहकर कार्य करता है। प्राचीनकाल में मुंडा के माध्यम से वसूल किया गया लगान मानकी के यहाँ एकत्र होता है, लेकिन आज के संदर्भ में वह लगान सी. ओ. को दे दिया जाता है।

मुंडारी खूटकट्टी क्षेत्र

मुंडारी खूटकट्टी क्षेत्र मुख्यतः मुंडा समुदाय का निवास स्थान रहा है। झारखंड के रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामू और धनबाद जिला मुख्य रूप से मुंडा क्षेत्रों के अन्तर्गत पड़ता है जहाँ वे निवास करते हैं।

आदिवासी के अन्य सामुदायिक क्षेत्रों की भांति मुंडारी खूटकट्टी क्षेत्र का प्रधान 'मुंडा' कहलाता है। प्रधान का कार्य होता है प्रशासन और न्याय से संबंधित कार्यों को देखना। गाँव में जिस प्रयोजन से बैठक बुलवाई जाती है, उसकी अध्यक्षता प्रधान करता है।

मुंडा के पश्चात् 'पाहन' पद आता है जो मुंडा का सहायक होता है। प्रधान (मुंडा) किसी कारणवश अनुपस्थित रहता है तो पाहन ही उसके स्थान पर समस्त कार्यभार स्वयं ग्रहण करता है।

धार्मिक पक्ष का नेतृत्व 'पुजारी पाहन' करता है। पर्व-त्योहार से संबंधित धार्मिक अनुष्ठान का कार्य पुजारी पाहन सम्पन्न करता है।

संदेशवाहक का अपना महत्वपूर्ण कार्य होता है और यह कार्य 'महतो' का होता है। न्याय व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए संदेशवाहक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। महतो गाँव के प्रत्येक लोगों तक मुंडा के द्वारा जारी किए सूचना को पहुँचाने का दायित्व निभाता है। यह एक प्रकार से मुंडा और पाहन के सहायक के रूप में कार्य करता है।

जो स्थान मानकी का होता है वही स्थान मुंडा समुदाय में 'पड़हा राजा' का होता है। बारह से बीस गाँवों को मिलाकर पड़हा बनता है। कुछ स्थानों में पड़हा राजा को मानकी भी कहते हैं। मुंडा क्षेत्र में पहले 12 पड़हा थे, लेकिन अब 22 पड़हा है। जिस मसले को निपटाने में मुंडा असमर्थ होता है, उस मसले का समाधान पड़हा राजा करता है।

22 पड़हा में एक 'राजा' होता है।

'ठाकुर पड़हा' राजा का सहायक होता है तथा उसके विभिन्न कार्यों में सहायता प्रदान करता है।

राजा का मंत्री 'दीवान' होता है जो राजा के आदेशों का हरसम्भव पालन करता तथा उसे व्यवहार में लाता है। दीवान दो तरह के होते हैं - 1) गढ़ दीवान, 2) राज-दीवान। गढ़ दीवान गढ़ के अन्दर ही कार्य की देखरेख करता है और उसमें सम्मिलित होता है। राज दीवान गढ़ के बाहर के कार्य की देखरेख करता है और उसमें सम्मिलित होता है।

सभा में जिस मामले की बैठक होती है तो बहस होना स्वाभाविक है। 'लाल' बहस करने का कार्य करता है। आज के संदर्भ में वकील की भूमिका 'लाल' निभाता है। 'लाल' तीन प्रकार के होते हैं - 1) बड़लाल, 2) मंडलाल, 3) छोटेलाल। इन तीनों का निर्णय किसी मामले के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

यदि किसी मामले के तहत कोई व्यक्ति समाज अथवा गोत्र विरुद्ध कोई कार्य करता है तो उसे समाज में वापस लाने के लिए शुद्धिकरण किया जाता है जो 'पुरोहित' करता है।

दंड स्वरूप जो क्षतिपूर्ति में मिली सामग्री होती है उसे 'घटवार' बाँट देता है। घटवार के पास ही दंड के रूप में मिले रुपये-पैसे सुरक्षित रूप से रखने का दायित्व होता है।

सभा में हाथ-पैर धुलाने का काम 'चंवार डोलाइत' करता है।

सभा में चूना-तंबाकू बांटने वाला व्यक्ति 'पान-खवास' कहलाता है।

प्रत्येक गाँव में दीवान के आदेशों को पहुँचाना 'सिपाही' (बरकंदाज) का कार्य होता है।

सभा की देख-रेख का दायित्व 'दरोगा' पर होता है। किसी प्रकार की आशंका होने पर उसकी जांच-पड़ताल तक दरोगा करता है।

सभा का लेखा-जोखा कागजी कार्य 'पांडेय' का होता है। यह राजा के आज्ञानुसार सूचना भी जारी करता है।

आदिवासी समुदाय की यह विशेषता है कि जितना लोकतांत्रिक न्याय व्यवस्था है, उतना ही लोकतांत्रिक न्याय स्थल है जिसे 'अखड़ा' कहते हैं। यह वह स्थल है जहाँ किसी न किसी मामले की बैठक होती है और गाँव के लोग सामूहिक रूप से अखड़ा में भाग लेते हैं। स्त्री, पुरुष, वयस्क व्यक्ति सभी इस सभा में एकत्रित होते हैं और अपनी सामूहिकता का परिचय देते हैं। अखड़ा मुख्यतः गाँव के बीचोबीच एवं पेड़ के नीचे होता है जहाँ सर्वमत के आधार पर न्याय मिलता है और सभी संतुष्ट होते हैं।

यदि स्त्री के अधिकार की बात की जाए तो स्त्री को अपने पिता की संपत्ति के रूप में भूमि का कुछ हिस्सा जीवनयापन के लिए दिया जाता है और यदि स्त्री विधवा है तो वही अधिकार उस पर लागू होता है अर्थात् पति की संपत्ति के रूप में भूमि का कुछ भाग उस स्त्री को दे दिया जाता है ताकि वह अपना जीवनयापन कर सके।

खड़िया समुदाय

खड़िया समुदाय आदिवासी समुदायों में से एक है। ये लोग गुमला तथा रांची से लेकर उड़ीसा क्षेत्र तक विस्तृत हैं तथा झारखंड में सिमडेगा क्षेत्र में इनकी बहुलता है। खड़िया समुदाय तीन प्रकार के होते हैं - i) पहाड़ी खड़िया ii) दूध खड़िया iii) ढेलकी खड़िया। खड़िया समुदाय की अपनी स्वशासन पद्धति रही है।

‘महतो’ खड़िया समुदाय का प्रधान एवं सर्वप्रमुख व्यक्ति होता है। ‘महतो’ के रूप में उसी व्यक्ति का चुनाव होता है जिन्होंने इस समुदाय की नींव रखी, अपने परिश्रम से गाँव को बनाया और बसाया। यह पद वंशानुगत है, किन्तु सर्वसम्मति से किसी अन्य योग्य व्यक्ति को भी महतो का पद दिया जा सकता है।

पर्व-त्योहार में पूजा-पाठ जैसे धार्मिक अनुष्ठान के कार्य सम्पन्न करने का दायित्व ‘पाहन’ का होता है। यद्यपि यह पद भी आनुवंशिक है, तथापि इसमें परिवर्तन के लिए स्थान है।

जो व्यक्ति शुद्धिकरण करता है वह ‘करटाहा’ होता है। जब कोई व्यक्ति अथवा परिवार को अशुद्ध मान लिया जाता है तो उसका शुद्धिकरण कर वापस समुदाय में शामिल कर लिया जाता है। पाहन की ही भांति पूजा-पाठ करके शुद्धिकरण किया जाता है। इस प्रकार के शुद्धिकरण को ‘भात-भीतार’ कहते हैं।

खड़िया समुदाय की स्वशासन प्रणाली के अन्तर्गत एक खड़िया महासभा होती है जिसे ‘खड़िया डोकलों’ कहते हैं। इस महासभा में महतो, पाहन एवं करटाहा रहते हैं। इस महासभा

का संचालन एवं संयोजन करटाहा ही करता है। खड़िया महासभा का सभापति 'डोकलों साहोर' होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मुख्य रूप से महतो, पाहन और करटाहा एकत्रित होते हैं जो वर्ष में एक दफा एकत्रित होते हैं।

भुईंहरी क्षेत्र

भुईंहरी क्षेत्र के अन्तर्गत उरांव समुदाय के लोग निवास करते हैं। भुईंहरी क्षेत्र उत्तरी और दक्षिणी छोटानागपुर मंडल में आता है। इस क्षेत्र में उरांव समुदाय ने अपनी स्वशासन प्रणाली को बड़े सुव्यवस्थित ढंग से चलाया है।

'महतो' गाँव का प्रधान होता है। यह पद वंशानुगत है, किन्तु सर्वसम्मति से किसी अन्य योग्य व्यक्ति को भी महतो का पद दिया जा सकता है।

महतो के संदेशवाहक का कार्य 'कोतवार' करता है। प्रत्येक गाँव में जाकर सूचना प्रदान करने का कार्य कोतवार करता है। एक प्रकार से यह महतो का सहायक होता है।

गाँव के विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानादि 'पाहन' ही सम्पन्न कराता है।

कई गाँवों के धार्मिक (पूजा पाठ) कार्यों को 'पुजार' सम्पन्न करता है।

पाँच से पंद्रह (5-15) गाँवों के ऊपर एक 'पड़हा राजा' होता है।

जितने भी पड़हा राजा होते हैं उनके बीच एक 'पड़हा दीवान' होता है। पड़हा-दीवान का कार्य होता है पड़हा राजाओं के बीच समन्वय रखना।

उत्तर पूर्व आदिवासी क्षेत्र (नागालैंड)

उत्तर पूर्वी क्षेत्र एक आदिवासी बहुल एवं विस्तृत क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, असम, मेघालय आदि आदिवासी क्षेत्र में आते हैं जिन्होंने अपनी स्वशासन प्रणाली को निरंतर जारी रखा है। नागालैंड इसका एक जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है जो अपनी स्वशासन व्यवस्था के लिए बड़ी दृढ़ता से संघर्ष कर रहा है।

नागा अओ (Ao) समुदाय की मुख्य सामाजिक-राजनैतिक संस्था 'गाँव सभा' है। साधारणतया प्रत्येक अओ नागा ग्राम में दो गोत्र के लोग रहते हैं जिसे खेल (Khel) कहते हैं। दोनों खेल एक दृढ़ समाज और राजनीति को निर्मित करते हैं जिसके दो स्तर होते हैं - पुटु मेंडेन और सेन्सो। पुटु मेंडेन में भिन्न-भिन्न उम्र के छः समूह होते हैं। सैंसों में दोनों खेलों के लोग 16 साल से लेकर वृद्ध व्यक्ति तक इसके सदस्य होते हैं।

पुटु मेंडेन - पुटु का अर्थ होता है पीढ़ी। एक पुटु का कार्यकाल 30 वर्ष तक होता है। इस प्रकार पाँच पुटु होते हैं जिसे पाँच पीढ़ी के रूप में देख सकते हैं।

अओ नागा समुदाय के अन्तर्गत पुटु मेंडेन की संरचना को इस प्रकार देख सकते हैं -

1) **ऑंगेर या ऑंग मेंडेन (Onger or Ong Menden)** - ऑंगेर मेंडेन का पद आनुवंशिक नहीं होता है। ऑंगेर मेंडेन गाँव सभा का सभापति होता है। वह प्रधान होता है जो अपनी सलाह देता है और निर्णय सुनाता है। इनकी सलाह अथवा निर्णय अनिवार्य नहीं होता है और न ही इसके पास निषेधाधिकार की शक्ति होती है। गाँव सभा का कोई भी सदस्य सुझाव देने का अधिकारी होता है।

2) **तुजार मेंडेन (Tuzang Menden)** - पुटु मेंडेन के जितने भी बड़े सदस्य होते हैं उनको मिलाकर तुजार मेंडेन निर्मित होता है। गाँव सभा की समस्त कार्यकारी शक्तियाँ तुजार मेंडेन के अन्तर्गत होता है। नवीन नियम-कानून निर्मित करने अथवा उसमें बदलाव करने, किसी नवीन कार्यक्रम को अपने हाथ में लेने तथा उसे निष्पादित करने की प्रशासनिक शक्तियाँ तुजार मेंडेन में होती हैं।

3) **टेकोंग मेंडेन (Tekong Menden)** - गाँव सभा के लिए कर वसूलना, पुटु मेंडेन के फैसलों को क्रियान्वयन करवाने का दायित्व होता है। इसके अतिरिक्त सूचनाओं के आदान-प्रदान करने का कार्य टेकोंग मेंडेन का प्रमुख कार्य है।

पुटु मेंडेन के सदस्य 'तातार' या 'सामेन' कहे जाते हैं।

सेन्सो - गाँव के किसी भी उम्र के वयस्क इसके सदस्य होते हैं। जबकि पुटु मेंडेन में चुने हुए वयस्क ही सदस्य हो सकते हैं। इसके सभापति को 'तिर (Tir)' कहा जाता है। यह पद आनुवांशिक नहीं होता है तथा गाँव के लोग किसी को भी तिर के रूप में चुन सकते हैं। तिर की सहायता के लिए सेन्सो के अन्तर्गत कार्यकारी परिषद (Executive council) होता है जिसे 'सानेन लुडेन' कहा जाता है। जिस विवाद को पुटु मेंडेन नहीं सुलझा सकती है, उस विवाद के लिए सेन्सो की बैठक बुलाई जाती है और उस विवाद को सुलझाती है। सेन्सो गाँव सभा का मुख्य सामूहिक संस्था है जिसका फैसला असहमति के बावजूद भी अंतिम माना जाता है।

इस प्रकार आदिवासियों के भिन्न समुदायों की स्वशासन प्रणाली पर दृष्टिपात करते हुए यह कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न समुदायों की स्वशासन प्रणाली में थोड़ा अन्तर तो है, किन्तु सभी इसी भांति व्यवस्था को संचालित करते आए हैं। उन सबके मूल में सामुदायिकता, सहभागिता तथा सर्वमत सर्वोपरि है। यहाँ राजा किसी पर शासन नहीं करता था। वस्तुतः स्वशासन के पाँच तत्व हैं -

- सहअस्तित्व
- सहजीविता
- समानता
- सहभागिता
- सामुदायिकता

ये तत्व दूसरों के हित में सोचने, विचारने की क्षमता प्रदान करती है। ये तत्व ही आदिवासियत हैं जो व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर संचालित होता है। ये सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के आधार हैं। आदिवासी समाज में कोई व्यक्ति आगे नहीं बढ़ता है, बल्कि पूरा समुदाय अथवा समाज आगे बढ़ता है। चाहे घर बनाना हो या धान बुनना, सभी कार्य सामूहिक

रूप से करते हैं, व्यक्तिगत रूप से नहीं। आदिवासी समाज में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होता है, कोई छोटा या बड़ा नहीं होता है। यद्यपि आदिवासी समाज अपने पूर्वरूप में मातृसत्तात्मक रहा तथा बाद में पितृसत्तात्मक बन गया और पितृसत्तात्मक व्यवस्था अब भी विद्यमान है, किन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि केवल पुरुषों का राज है, स्त्रियों का कोई महत्त्व नहीं। स्त्रियों को भी उतना ही अधिकार प्राप्त था जितना कि पुरुषों को अधिकार प्राप्त था। ग्राम सभाओं में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी रही है। पारिवारिक संपत्ति पर स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त है।

आदिवासी समुदाय की स्वशासन प्रणाली सामान्य जन की संख्या के आधार पर नहीं चलता है। बहुमत और अल्पमत संख्या के आधार पर न्याय व्यवस्था की एक प्रणाली है जो आदिवासी समुदाय में प्रचलित नहीं था। आदिवासी स्वशासन व्यवस्था तो सर्वमत के आधार पर संचालित होता है जहाँ सभी का मत महत्त्वपूर्ण होता है। बहुमत और अल्पमत के आधार पर न्याय त्रुटिपूर्ण भी हो सकता है क्योंकि ऐसा हो सकता है कि सही एवं वास्तविक तथ्य से पूर्ण लोगों की संख्या कम हो तो ऐसी स्थिति में सही निर्णय का निर्धारण करने की अपेक्षा करना सम्भव नहीं। गाँव के बड़े-बुजुर्गों ने गाँव और समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए कुछ नियम बनाए और उन्हें लागू भी किया। ये नियम पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रही और व्यवहार में लाया गया। व्यवहार में उपयोगी साबित होने पर इसे कानून के रूप में स्थान प्राप्त हुआ। “गाँवों के बुजुर्गों ने अपने गाँव में बसे लोगों के सामाजिक, धार्मिक, प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक विषयों पर गाँव के मुंडा, माँझी, महतो आदि की अध्यक्षता में विभिन्न समयों पर जो नीति-नियम-विनियम तथा रीति-विधि और आचार-संहिता निश्चित किए, पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनके खरे उतरने और लोकोपयोगी साबित होने पर इन्हीं नीति-विधि और आचार-संहिता को प्रथागत कानून (रीति-दस्तूर-कस्टमरी लॉ) का रूप और दर्जा दिया गया तथा आदिवासी समुदाय अपने ही बनाए इस प्रकार के प्रथागत कानूनों से सदैव शासित रहे एवं आज भी शासित हो रहे हैं।”² आदिवासी ग्राम के अन्तर्गत ग्राम सभाएँ विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका

के रूप में कार्य करती हैं। आदिवासी परंपरा के अनुसार ये ही आदिवासी स्वशासन प्रणाली के अंग हैं। आदिवासी गणतंत्र के अन्तर्गत तीन सभाएँ होती हैं - ग्राम सभा, क्षेत्रीय सभा और देशी सभा। “सभी स्तर की सभाओं में विचार-विमर्श के समय हमेशा परंपरा और पूर्वोदाहरणों का खयाल रखा जाता है, क्योंकि आदिवासी समाज वाक् पटुता (रीजनिंग) पर कम और अनुभूतियों पर अधिक विश्वास रखते हैं।”³ इन सभाओं का कार्य आदिवासी समुदाय के सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, धार्मिक मामलों को सुलझाना है। ग्राम सभाओं से इतर अन्य सभा होती है जिसे अंग्रेजी में इंटर-विलेज कौंसिल तथा आदिवासी समुदायों के अनुसार मुंडा क्षेत्र में पड़हा-मानकी पट्टी सभा, उरांव क्षेत्र में पड़हा सभा इत्यादि नाम से जाने जाते हैं। आज भी इन सभाओं का अस्तित्व विद्यमान है।

गाँव में जब भी कोई विवाद उत्पन्न होता है तो सबसे पहले गाँव के प्रधान को इसकी सूचना प्रदान की जाती है। प्रधान विवाद की पूर्ण रूप से जाँच पड़ताल करता है तथा ग्राम सभा और अन्य सदस्यों की सहायता से अपराधी पक्ष सहित गाँव के लोगों की एक बैठक बुलाई जाती है। इस बैठक का उद्देश्य है कि जो भी निर्णय लिया जाए सर्वमत से लिया जाए। दंड भी दोषानुरूप तय होता है, कभी-कभी कुछ मामले ऐसे होते हैं जिसमें दंड के रूप में समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। संताली में इसे ‘बिटलाहा’ कहा जाता है। ग्राम सभा के स्तर पर निर्णय न होने पर मसले को पंचायत के हाथ सौंप दिया जाता है। यदि पंचायत स्तर पर मसले का हल नहीं निकलता है तो संतालों में परगनैत, हो में तीन-मानकी तथा उरांवों में पड़हा-राजा के हाथ सुपुर्द कर दिया जाता है जिसका फैसला आखिरी होता है। इस प्रकार किसी समस्या का हल सर्वमत को ध्यान में रखकर निकाला जाता है जो आदिवासी स्वशासन प्रणाली की खासियत है। समस्त मामलों का लेखा-जोखा मौखिक रूप से रखा जाता रहा है और वह मौखिक लेखा-जोखा ही सर्वमान्य है। दंड के रूप में जो भी लिया जाता है उसे तुरंत सभी लोगों में वितरित कर दिया जाता है।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था लागू होने के पहले तक आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों का ही शासन था, किन्तु अंग्रेजी शासन व्यवस्था के पश्चात् जमींदारी प्रथा का उद्भव हुआ जिसने आदिवासियों का भिन्न-भिन्न तरीके से शोषण किया। पहले वे मुख्यतः लगान वसूलने का कार्य करते थे, इसके पश्चात् अनाज लूटने लगे। लोभ का जनजाल इतना बढ़ा कि अनाज लूटते-लूटते जमीन की लूट होने लगी। स्वयं को आदिवासी जमीन का मालिक घोषित कर जमीनों को लूटने लगे। जिन गांवों में इनका प्रभाव और शोषण बढ़ता गया, उन गांवों से आदिवासियों की स्वशासन व्यवस्था नष्ट हुई। युगों-युगों से चलती आ रही पारंपरिक एवं प्राकृतिक स्वशासन व्यवस्था की संरचना को इन जमींदारी शोषण ने तहस-नहस कर दिया। स्वशासन प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न पदों पर भी जमींदारों के अधीन पट्टों का ही बोलबाला रहा। वस्तुतः आदिवासियों की स्वायत्त व्यवस्था पर जमींदार अथवा तहसीलदार अपनी धाक बनाने में विजयी रहे और आदिवासी उनके अधीनस्थ होने के लिए विवश हुए। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जिन क्षेत्रों में जमींदारों और साहूकारों ने प्रवेश नहीं किया था, उन क्षेत्रों में आदिवासी स्वशासन प्रणाली ज्यों की त्यों विद्यमान रही और आदिवासी सचेत भी हो गए थे। उन्होंने उन तहसीलदारों को प्रवेश न करने का हरसम्भव प्रयास किया और वे सफल भी रहे। उनका एक ही उद्देश्य था - अपनी परंपरा को संरक्षित करना। अंग्रेजों ने इस तथ्य को समझा और उनकी स्वशासन व्यवस्था को उनके अनुरूप संचालित करने की छूट प्रदान की। इस संदर्भ में शरत चंद्र राय का कथन द्रष्टव्य है - "But at the same, the Manki, like the Munda, was always looked upon as a chief among equals - a leader and not a ruler. Nor did any superior rights of property appertain to the Mankiship. As with most oriental institutions, the offices of the Manki as well as of the Munda, gradually came to be hereditary. In the internal administration each village, the Munda was assisted by the village Panch or Council of village elders. The tribunal thus constituted, arbitrated in all disputes amongst the villagers inter se."⁴ अर्थात्

अंग्रेजों ने आदिवासियों को अपनी स्वेच्छा से अपनी परंपरागत न्याय व्यवस्था को जारी रखने की अनुमति प्रदान की तथा उसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। अंग्रेजों ने इसे बकाया कानूनी मान्यता प्रदान की। कहने का तात्पर्य यह है कि वाह्य तौर पर अंग्रेजों का ही शासन था, किन्तु आंतरिक रूप से आदिवासियों का अपना स्वशासन ही कायम था।

5 वीं-6 ठी अनुसूची

राष्ट्रपति के आदेशानुसार ही अनुसूचित क्षेत्र को निर्धारित किया गया है जिसके अन्तर्गत 5वीं-6ठी अनुसूची के निर्धारण का प्रावधान है। 5 वीं अनुसूची के अन्तर्गत आंध्रप्रदेश, तेलंगना सहित छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, ओड़ीशा और राजस्थान जैसे राज्य शामिल हैं। इन्हें भारत का मैदानी क्षेत्र भी कहा जाता है। 6ठी अनुसूची के अन्तर्गत असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, नागालैंड राज्य सम्मिलित हैं। ये क्षेत्र पूर्वोत्तर के हिमालयन क्षेत्र कहलाते हैं। एक नया क्षेत्र 6ठी अनुसूची में शामिल किया गया है - लेह और कारगिल। अरुणाचल प्रदेश को किसी भी अनुसूची में शामिल नहीं किया गया है, उसे अनुच्छेद 371 में शामिल किया गया है। ध्यातव्य है कि पश्चिम बंगाल के चाय बागान वाले क्षेत्र किसी भी अनुसूची के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इसी प्रकार बिहार का उत्तरी क्षेत्र (पूर्णिया, दरभंगा आदि) तथा अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह 5वीं-6ठी अनुसूचियों में सम्मिलित नहीं है। “अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासियों के अलावा कारीगर समुदायों की भी आबादी निवास करती है। साथ ही कुछ हिन्दू एवं मुस्लिम धर्मावलंबी भी कुछ सदियों से रहने लगे हैं। जिन्हें अब अनुसूचित क्षेत्रों में ‘डोमिसाइल’ प्राप्त है और जो वहाँ के मूलवासी भी कहे जाते हैं। ये गैर आदिवासी मूलवासी वे लोग हैं जो आदिवासी इलाकों में राजतंत्र शुरू होने के बाद से बसे हैं। झारखंड में जिन्हें ‘सदान’ और खासकर पूर्वोत्तर के मणिपुर में ‘मिताई’ कहा जाता है। असम में जिनको ‘अहोम’ मूल का माना जाता है।”⁵

जिन क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है, उन अनुसूचित क्षेत्रों की संस्कृति पर चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। सभ्यता का सीधा सम्बन्ध सामाजिक-आर्थिक विकास से है। जो समाज जितना विकसित होगा वह उतना ही सभ्य माना जाएगा। पूंजीवाद तथा भूमंडलीकरण सीधे तौर पर सभ्यता से जुड़ा हुआ है। इसी आधार पर अमेरिका विकसित देशों में से एक है तथा भारत विकासशील देशों में से एक है। “लेकिन इन आधारों पर, यानी सभ्यता के आधार पर आप एक समाज, राष्ट्र की तो पहचान कर सकते हैं, पर उस समाज या राष्ट्र में रह रहे अलग-अलग किस्म के मानव समूहों, प्रजातियों, समुदायों और जातियों की पहचान नहीं कर सकते हैं।...आज पूरी दुनिया इंटरनेट इस्तेमाल करती है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि पूरी दुनिया की सभ्यता एक है। लेकिन यह जो सभ्य दुनिया है, वह एक तरह की नहीं है। उसमें कई तरह की भाषाएँ हैं, जीवन पद्धतियाँ हैं, धार्मिक विश्वास है, रहन-सहन है, खान-पान है, सोच-विचार हैं। और यही वे बेसिक तत्व हैं जो एक समान भौतिक और तकनीकी दुनिया के मानव प्रजातियों को, समुदायों, समूहों और जातियों को एक-दूसरे से अलग कर देती है।”⁶ यह अलगाववादी दृष्टि आदिवासियों को जंगली, बर्बर, असभ्य तथा उनकी संस्कृति को हेय दृष्टि से देखती है तथा मुख्यधारा की संस्कृति स्वयं को सभ्य और आधुनिक विचारों से लैस मानती है जिसमें पूंजी मुख्य रूप से कार्य करती है। इस तथ्य के आधार पर कहा जा सकता है कि अनुसूचित क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला समुदाय संस्कृति के आधार पर पल्लवित होता है जहाँ किसी सत्ता का कोई नियंत्रण नहीं, अपितु स्वयं द्वारा शासित है जो प्रकृति प्रदत्त है, जहाँ पुरखों के नियम, बुद्धि-विवेक और ज्ञान कार्य करता है तथा समस्त समुदाय इन नियमों द्वारा संचालित होता है। उन्हें भौतिक वस्तुओं की कोई लालसा नहीं, बल्कि अपना जीवन स्वेच्छा से व्यतीत करना चाहते हैं।

6ठी अनुसूची के अन्तर्गत जो क्षेत्र आते हैं उन क्षेत्रों में नागा आदिवासी समुदाय के अओ समुदाय की स्वशासन प्रणाली को बनाए रखने में तथा उसे कार्यरत रूप में संरक्षित और संघर्ष करने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। नागालैंड के अओ आदिवासी समुदाय

की सबसे उच्च स्तर की संस्था है 'गाँव सभा' अर्थात् 'विलेज काउंसिल' है। साधारणतया प्रत्येक ग्राम में दो प्रकार के वंशज रहते हैं, जिसे 'खेल' (khel) कहते हैं। ये दोनों वंशज के लोग आपस में सहभागिता दर्शाते हुए गाँव में एकता बनाए रखते हैं। इसके दो स्तर हैं - पुटु मेंडन (Putu Menden) और सेन्सो (Senso)। पुटु मेंडन और सेन्सो के अतिरिक्त 'मोरुंग' (Morung) होता है। युवक-युवतियों से लेकर वयस्क तक के लोग यहाँ रहकर विभिन्न सामाजिक दायित्वों से परिचित होते हैं और कार्य सीखते हैं तथा इन्हें अपने जीवन में व्यवहार में लाते हैं। अरुणाचल प्रदेश के 'आदी (Adi)' आदिवासी समुदाय इस प्रकार की संस्था को 'केबांग' कहते हैं। कानूनी, प्रशासनिक कार्यभार पुटु मेंडन और सेन्सो पद पर प्रमुख रूप से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि क्षेत्र, स्थान और समाज में भले ही भिन्नता रहे, किन्तु पारंपरिक प्रशासन प्रणाली सभी क्षेत्रों में लगभग एक समान है। आदिवासी स्वशासन पद्धति में गाँव एकता का महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है जिसे गाँव सभा, विलेज काउंसिल या गाँव गणराज्य या विलेज रिपब्लिक भी कहा जाता है। यह तीन तरह के होते हैं - पहला गाँव सभा, दूसरा क्षेत्रीय सभा और तीसरा दिसुम सभा। गाँव सभा का एक प्रधान होता है तथा जैसा कि नाम से स्पष्ट है गाँव सभा अर्थात् गाँव के लोग इसके सदस्य होते हैं। गाँव सभा का प्रधान पद आनुवांशिक और चुनाव आधारित दोनों प्रकार से होता है। धार्मिक अनुष्ठानादि करने के लिए पाहन पद प्रमुख रूप से कार्य करता है। गाँव सभा के कई कार्य होते हैं जैसे सूचना प्रदान करना, कर वसूलना आदि और उन कार्यों को दीवान, महतो, गोड़ेत आदि व्यक्ति करते हैं। इसके पश्चात् क्षेत्रीय सभा पर दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि क्षेत्रीय सभा के सदस्यों में हर एक गाँव के प्रधान तथा अन्य अनुभवी लोग सदस्य हुआ करते हैं। दिसुम सभा सभी सभाओं में शीर्षस्थ संस्था माना जाता है जिसमें सदस्यों के रूप में क्षेत्रीय सभा के कुछ मुख्य लोग होते हैं। ये तीनों सभाएँ आदिवासी स्वशासन को निर्विकार रूप से चलाने के लिए महत्वपूर्ण माने गए हैं। न्याय के स्तर पर जो भी मामले उत्पन्न होते हैं, प्रयास यही रहता है कि उसे गाँव सभा में ही सुलझा लिया जाए।

कुछ गंभीर मसले जिसका हल गाँव सभा निकालने में असमर्थ होती हैं तो उन मामलों का निराकरण क्षेत्रीय सभा और दिसुम सभा करती है।

आदिवासी पारंपरिक स्वशासन प्रणाली को बरकरार रखने के लिए ग्राम सभा का निर्माण किया गया है। भारतीय संविधान ने प्राचीन व्यवस्था गाँव समाज जिसे पंचायत भी कहते हैं, को ग्राम सभा में परिवर्तित कर दिया। आदिवासी समुदाय के संदर्भ में एक पूर्ण समाज के होने पर प्रश्न चिन्ह उठता है। इसी के फलस्वरूप नवीन व्यवस्था के रूप में 'ग्राम सभा' का निर्माण हुआ। वस्तुतः यह नवीन व्यवस्था न होकर प्राचीन व्यवस्था ग्राम समाज अथवा पंचायत का संशोधित रूप है जिसके अन्तर्गत गाँव के लोग सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। हर एक गाँव के लिए एक ग्राम सभा होती है। ग्राम सभा अपने आप में एक समाज है। किसी भी समाज की प्रशासनिक व्यवस्था का उद्देश्य होता है - समस्त विवादों का समाधान बिना किसी समस्या के सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाए जिसके लिए प्रशासन व्यवस्था एवं उसकी संरचना निर्मित की जाती है ताकि किसी भी प्रकार की आशाएँ निराशाओं में न परिवर्तित हो जाए। आदिवासी समाज पारंपरिक शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए पूर्णतया सक्षम है। इसे आदिवासी समाज की व्यवस्था कह सकते हैं। ग्राम सभा को कई अधिकार प्रदान किए गए हैं जिसके अन्तर्गत विकास से संबंधित कार्य के अधिकार क्षेत्र प्राप्त हैं। केन्द्रीय सरकार गाँव के विकास के लिए कई योजनाएँ बनाती हैं जिसे लागू करने के लिए ग्राम सभा की अनुमति एवं समर्थन आवश्यक होता है। अर्थात् ग्राम सभा की अनुमति के बिना कोई भी विकास से संबंधित योजनाएँ चाहे सामाजिक हो या आर्थिक लागू नहीं की जा सकती हैं। ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र सीमित नहीं अपितु व्यापक है। गाँव के उत्थान एवं आवश्यकतानुरूप धन का व्यय होता है जो स्वाभाविक है। ग्राम सभा इन व्ययों पर नजर रखती है ताकि अपव्यय न हो। जो भी धन व्यय होते हैं उसके देखरेख का अधिकार ग्राम सभा को है। ग्राम सभा भूमि-संग्रह (अर्जन) पर अपनी सलाह देती है जिसमें समाज भी सम्मिलित होता है। सरकार यदि किसी व्यक्ति विशेष का भूमि अर्जन करती है तो उसे ग्राम सभा से परामर्श लेना आवश्यक है। यदि भूमि-

संग्रह किसी विकास योजना के उद्देश्य से किया जा रहा है तो ग्राम सभा से बिना अनुमति के भूमि-संग्रह नहीं किया जा सकता है। शराब का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। यदि यह हमारी रोजमर्रा के जीवन में लत अथवा आदत बन जाए तो यह प्राण लेकर छोड़ता है। शराब आदिवासी संस्कृति एवं समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसे वे हड़िया कहते हैं, हड़िया का उपयोग पर्व-त्योहार, धार्मिक अनुष्ठानादि जैसे शुभ कर्मों में करते हैं। वाह्य संस्कृति के प्रवेश के पूर्व इसे आदत का हिस्सा कभी नहीं बनाया गया था। किन्तु परंपरागत हड़िया के स्थान पर मद्यपान की लत ने उन्हें शोषण का शिकार बना दिया है। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि उन लोगों की जरूरतों को न देखते हुए, पारम्परिक मान्यताओं को नजरन्दाज करते हुए शराब के पेय पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। इसके तहत ग्राम सभा को मद्यपान से संबंधित समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं। “गाँव समाज यानी ग्राम सभा चाहे तो अपने समाज में मद्य-निषेध लागू करे या मद्य-निषेध न लागू किए जाने की हालत में भी वह मादक पदार्थों की बिक्री पर रोक लगा सकती है या गाँव के लोगों के मद्यपान के मामले में संयम बरतने के लिए नियम बना सकती है। इस व्यवस्था के उल्लंघन के लिए जाहिर है कि उसे दंड देने का अधिकार भी होगा। दंड की व्यवस्था भी आदिवासी परंपरा का अभिन्न अंग है।”⁷ ग्राम सभा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह आदिवासियों के जमीन की रक्षा करे। कोई भी व्यक्ति ग्राम-सभा के रहते आदिवासियों से जमीन अधिग्रहित नहीं कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति आदिवासी भूमि को किसी षड़यंत्र के तहत हड़प लेता है तो यह ग्राम सभा ही उसके साथ न्याय करेगी और उसे उसकी भूमि वापस दिलाने में सहायता करेगी। इसके लिए आदिवासियों को किसी प्रकार की कानूनी सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती है। वन संसाधनों पर केवल एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि पूरे समुदाय का अधिकार होता है। इसकी देखरेख की जिम्मेदारी आदिवासी समुदाय सदियों से करते आए हैं और इसके देखरेख का कानूनी अधिकार ग्राम सभा को दिया गया है। लघु वनोपज का मालिकाना अधिकार ग्राम सभा को प्राप्त है। “वैसे तो सामुदायिक संपदाओं में हर तरह के वन शामिल हैं और उनके प्रबंध की परंपरागत व्यवस्था

को मान्यता मिल जाने के बाद दूसरी बातों के अलावा उससे कंद-मूल, फल या दूसरी उपयोगी चीजें निकालने का अधिकार मिल ही जाता है। फिर भी इस मामले में किसी तरह का मतभेद या विवाद न रहे इसको साफ करने के लिए नए कानून के तहत लघु वनोपज का स्वामित्व ग्राम सभा को दिये जाने की व्यवस्था है।⁸ लघु वन संसाधन पर ग्राम सभा का अधिकार होता है, उसके देखरेख का समस्त एवं समुचित व्यवस्था का अधिकार ग्राम सभा का होता है। यदि सरकार वन पर अपना हक जताती है तो ग्राम सभा से परामर्श के साथ-साथ सहमति भी आवश्यक हो जाता है। बिना परामर्श और सहमति के सरकार किसी प्रकार का कार्यवहन नहीं कर सकती है। वन संसाधन खनिज सम्पदा से भरपूर है जहाँ खनिजों का विपुल भंडार है। कानून के तहत खनिज सम्पदा की देखरेख का पूर्ण अधिकार ग्राम सभा को है। परन्तु अभी पूर्ण मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। नवीन नियम-कानून के तहत कुछ गौण खनिजों के संदर्भ में ग्राम सभा को कुछ अधिकार प्राप्त हैं। उदाहरण स्वरूप गौण खनिजों की उपयोगिता के संदर्भ में नीलामी होती है अथवा उसका क्रय-विक्रय होता है तो उसके लिए प्रथमतः ग्राम सभा की सिफारिश की आवश्यकता होती है। खनिज संपदा से युक्त किसी भू-क्षेत्र के विश्लेषण तथा खुदाई के लिए पट्टा प्रदान करने से पूर्व ग्राम सभा की सिफारिश आवश्यक है।

ऋण की समस्या एक महत्वपूर्ण एवं गहरी समस्या है विशेषतः आदिवासी समुदाय के लिए ऋण की समस्या ने अपनी जड़ें जमा रखी है जिसका परिणाम यह निकलता है कि उनकी अपनी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। इसी ऋण की वजह से घर और खेत छिनते चले जाते हैं। नवीन नियम के अनुसार ऋण के लेन-देन की सम्पूर्ण व्यवस्था पर ग्राम सभा का पूर्ण अधिकार है। वित्तीय संबंधी संसाधनों पर ग्राम सभा का अधिकार होता है। किसी भी योजना को लागू करने के लिए जो भी धन-राशि प्रदान की जाती है उसकी देखरेख की जिम्मेदारी ग्राम सभा को प्राप्त है। सरकार क्षेत्रीय अथवा स्थानीय विकास के लिए कई योजनाएँ निर्मित करती है और भिन्न-भिन्न योजनाओं के अनुसार अर्थ का वितरण होता है जिससे गाँव का हित हो। ग्राम

सभा आर्थिक रिसोर्स पर अपना पूर्णतया नियंत्रण रखती है ताकि धनराशि का किसी भी प्रकार का दुरुपयोग न हो।

भूमंडलीकरण के आने के साथ-साथ पूंजी के निजीकरण की प्रक्रिया में इजाफा हुआ। पूंजी ही केन्द्र में है और पूंजी ही सर्वोपरि है। आदिवासी समाज ने कभी भी अर्थ का निजीकरण नहीं किया। यही कारण है कि वे अर्थ के मोहजाल से अनभिज्ञ हैं, उसे जानने में असमर्थ हैं और वे इस मोहजाल में फँसते चले जाते हैं। इस असमर्थता के कारण उनका सब कुछ छिनता चला गया यहाँ तक कि उनकी पहचान भी उनसे छिनती चली गई। उनकी पहचान को बरकरार रखने के लिए कानून में मान्यता प्राप्त है। इस कानून के तहत ग्राम सभा को अपनी अस्मिता की रक्षा करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। वस्तुतः आदिवासी समुदाय स्वयं अपनी रक्षा कर सकता है, इसके लिए उसे कानूनी हक भी प्राप्त है। प्रत्येक समुदाय को स्वयं की रक्षा करने का पूरा अधिकार है और यह स्वाभाविक भी है। सम्मान से जीवन यापन करना प्रत्येक मनुष्य विशेषतः समाज की इच्छा आदिकाल से रहती आई है। अतः हम कह सकते हैं कि आदिवासी समाज को स्वशासन व्यवस्था को निरंतर बनाए रखने के लिए कानूनी हक प्राप्त है। स्वशासन और नैसर्गिक प्रणाली के बिना जीवन निष्प्राण के समान है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदिवासी स्वशासन की पारंपरिक प्रणाली पूर्णतया आडंबरविहीन, सहज एवं प्राकृतिक है जहाँ स्वच्छंद मानव-मूल्य के साथ-साथ अनुशासन विद्यमान है। यहाँ सामुदायिक भागीदारी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह भागीदारी नृत्य-गान के साथ-साथ विभिन्न बैठकों में भी सहज भागीदारी होती है। उनकी सकारात्मक सोच प्रत्येक गतिविधियों, विशेषतः स्वशासन नीति को श्रेष्ठतम बनाती है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आदिवासी परंपरा सम्पूर्ण मानव जगत को एक बेहतर समाज बनाने में सक्षम है।

ii) क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न

नेतृत्व वह क्षमता है जिसके माध्यम से जनसमूह को एकाकार कर लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है। सामूहिक एकता को बनाए रखते हुए उमंग एवं जोश का संचार करते हुए सही दिशा प्रदान करने में सहायक होता है। दिशा के प्रति समूह को कार्यरत करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है जिससे समूहों को एक दिशा मिले और संगठित हो सके तथा संघर्ष करते हुए आगे बढ़े। आस्थाएँ दृढ़ होती हैं पर विश्वास अडिग ही नहीं बनते बल्कि उसे बनाया जाता है। नेतृत्वकर्ता अपनी सोच और विचारों को जन-जन तक पहुँचा सके और उसे अपने कार्य से प्रभावित कर सके। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। समूह को ऐसे नेतृत्वकर्ता की आवश्यकता होती है जो निःस्वार्थ भाव से उनके अधिकारों के लिए लड़ सके। उनके भीतर आत्मविश्वास, आत्मबल, हौसला, मनःस्थिति, नैतिक स्तर को बनाए रख सके या जाग्रत कर सके। एक अच्छे नेता की यह बहुत बड़ी विशेषता होती है कि वह समाज के लोगों का मार्ग प्रशस्त करें। उनमें यह क्षमता होनी चाहिए कि वह हर परिस्थिति के अनुकूल कार्य कर सके।

एक वास्तविक गणतांत्रिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है आर्थिक और सामाजिक भेदभाव रहित समाज। जो समाज समानता की नींव पर टिका हुआ हो, वह समाज सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक समाज माना जाता है। जहाँ सभी लोग सहभागिता के सिद्धांत को अपनाते हुए एक सहभागी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। ऐसे समाज को एक कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है। किशन कालजयी के शब्दों में, “एक समय था जब राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में नेतृत्व स्वाभाविक तौर पर उभरता था और उसे स्वाभाविक स्वीकृति भी मिल जाती थी। समाज ईमानदारी से अपना नेता चुन लेता था, और नेताओं में भी वे गुण होते थे जो होने चाहिए थे। तब के नेताओं को अपेक्षाकृत निष्ठा, नैतिकता और सामाजिक मूल्यों की परवाह रहती थी और उनके गंभीर सामाजिक सरोकार होते थे।”⁹ जन-साधारण स्वेच्छा से अपने नेता का चुनाव करता है और लोकतांत्रिक व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए

नेता पूर्ण ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है। आज के संदर्भ में देखा जाए तो नेता एक कुशल नेतृत्व की लम्बी प्रक्रिया से न गुजरकर 'शॉर्टकट' मार्ग की अपेक्षा रखता है।

राजनीति के संदर्भ में आदिवासी नेतृत्व पर विचार करें तो देखते हैं कि आदिवासियों के नेतृत्व का लम्बा इतिहास रहा है जिसे एक व्यापक फलक में देखने की आवश्यकता है। आजादी के लगभग सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व से ही ऐसे दिग्गज आदिवासी नेता उभर कर सामने आए जो अपने सटीक मार्ग दर्शन से आदिवासी जन-समुदाय का नेतृत्व किया और एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया तथा जन-समुदाय के लिए प्रेरणा बने। लगभग देश के सभी क्षेत्रों से आदिवासी नेतृत्व का उभार द्रष्टव्य है जिन्होंने अधिकांशतः अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाइयाँ लड़ीं। प्रश्न यह उठता है कि आखिर क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न क्यों उभरा? ऐसे क्या कारण थे जिसने क्षेत्रीय नेतृत्व को एक उर्वर जमीन प्रदान की?

आदिवासी समुदाय की अपनी प्राचीन एवं समृद्ध परंपरा रही है। इस परंपरा को बरकरार एवं संरक्षित रखने के लिए आदिवासियों ने प्रकृति के क्रोध एवं वरदान दोनों को क्रमशः आपदाओं और विपुल संसाधनों के रूप में प्राप्त किया। सघन वन को अपने परिश्रम से साफ कर खेती एवं रहने योग्य बनाया। तब जाकर इनकी वन्य परंपरा स्थापित हुई। इन्हें स्वच्छंद जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्रकृति ने प्रदान किया है, किन्तु इनके अधिकारों को अंग्रेजों ने छीन लिया। उन्होंने न केवल जंगलों में अनाधिकार प्रवेश किया, बल्कि आदिवासियों के जीवन में हस्तक्षेप किया। अंग्रेजों की औपनिवेशिकरण की प्रक्रिया में महाजन, सूदखोर, जमींदार आदि ने एक माध्यम के रूप में बिचौलिया का कार्य किया जो कम्पनी सरकार के दम पर आदिवासियों का शोषण करते थे। मनमाना कर वसूलना, आदिवासी स्त्रियों के साथ दुष्कर्म करना, ऋण समस्या आदि से संबंधित घटनाएँ घटने लगीं जो पहले कभी नहीं घटीं और न ही इस प्रकार की घटनाएँ देखने अथवा सुनने को मिलती थीं। यह प्रत्यक्षतः आदिवासियत पर प्रहार था जो असहनीय था। उनकी सामाजिक संरचना ढहती नजर आ रही थी जिसे वे किसी भी मूल्य पर बचाना चाहते थे। आदिवासियत की रक्षा के प्रति प्रतिबद्ध कई आदिवासी लड़ाका

उभर कर सामने आए जिन्होंने आदिवासी समुदाय का नेतृत्व किया और लोगों को संगठित कर औपनिवेशिक ताकतों के प्रति संघर्ष करने के लिए मोर्चा संभाला। तिलका मांझी, सिदो-कान्हू-चाँद-भैरव, सोबरन मांझी, शिबू सोरेन, गोविन्द गुरु आदि ऐसे जननायक के रूप में उभरे जिन्होंने आदिवासी स्वायत्तता के लिए आवाज उठाया और उनका आंदोलन क्षेत्र का जन संगठित आंदोलन बना।

अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध सर्वप्रथम तिलका मांझी ने आंदोलन किया था। राजमहल का पहाड़िया क्षेत्र पहाड़िया आदिवासी समुदाय का निवास स्थल था। राजमहल की पहाड़ियों के उत्तर में बसे पहाड़िया समुदायों ने स्वयं को शक्तिविहीन समझकर अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु दक्षिणी क्षेत्र के पहाड़िया समुदायों ने अंग्रेजों के अधीन रहना स्वीकार नहीं किया और इसका पुरजोर विरोध किया। तिलका मांझी दक्षिण क्षेत्र के पहाड़िया आदिवासियों का प्रधान (मांझी) था, किन्तु उन्होंने उत्तर और दक्षिण पहाड़िया आदिवासी समुदाय को एक किया और अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासियों का नेतृत्व किया। उन्होंने जन समुदाय को संबोधित करते हुए कहा था - “मैं आगे रहूँगा। साथ दो। बीतते पूस माह में हम सामूहिक शिकार खेलते हैं। समझो हमारा शिकार आज से ही शुरू हो गया है। कंपनी इधर आई तो काट देंगे कंपनी को।”¹⁰ अपने गाँव के मान-सम्मान, पारस्परिक सद्भाव, पुरखों की परम्परा को जीवट रखने के लिए तिलका मांझी सदैव प्रतिबद्ध थे। वह सदैव पहाड़िया समुदाय की आजादी का स्वप्न देखता था जो उनसे छीन लिया गया। बाहरी समाज के अनागत प्रवेश ने उनकी विरासत, उनकी पुरखौती संपत्ति पर अपना आधिपत्य कर लिया। बचपन से ही तिलका मांझी ने अपने पिता से समुदाय की रक्षा करने के लिये पुरखों के शहादत को और अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये बहाए गए रक्त की अमरगाथा को सुना था जिसे वह विस्मृत न कर सका। ये कथाएँ, स्वतंत्र राज्य का स्वप्न उसे प्रेरणा देने का कार्य करती थी। स्वयं पर विश्वास होने के कारण ही उन्होंने पंचायत के समक्ष मांझी की तीन कठिन चुनौतियों को स्वीकार कर लिया था और अंग्रेजी हुकुमत से अपने राज्य को स्वतंत्र करने की शपथ ली। अंग्रेज पहाड़िया समुदाय से सस्ते दर में अनाज

खरीदा करते थे जिससे अनाज की अत्यधिक लूट हुई। इस अनाज को ऊँचे दर में अंग्रेज विक्रय कर धन संचय करते थे। तिलका मांझी ने प्रथम बार कंपनी सरकार के धन को लूटकर अपने ही धन को वापस लाने का कार्य किया। इस घटना के माध्यम से तिलका मांझी ने कंपनी सरकार के विरुद्ध आंदोलन की घोषणा कर दी जिसके साथ ही कंपनी सरकार की सुरक्षा-व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लग गया। एक ओर अंग्रेजों को बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई वहीं दूसरी ओर पहाड़िया समुदाय से वे लगातार मात खाए जा रहे थे। कंपनी सरकार ने अपना एक महत्वपूर्ण अफसर कैप्टन ब्रुक को खोया था जिन्होंने, “जंगलतराई में देशी व्यापारियों, मित्र जमींदारों और सूदखोर महाजनों को बसाना प्रारम्भ किया था। यह जंगलतराई में आदिवासियों को अल्पसंख्यक बनाने की कूटनीति थी। यह आदिवासियों और गैर आदिवासी मूलवासियों के बीच कंपनी के दलालों-बिचौलियों को स्थापित करने की रणनीति थी।”¹¹ तब अंग्रेजों ने कूटनीति का सहारा लिया। कैप्टन ब्राउन ने कंपनी सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि उन पर युद्ध से नहीं अपितु उनका विश्वास प्राप्त करके विजय पाई जा सकती है। आदिवासी जितने वीर और साहसी हैं उतने ही भोले और सरल हृदय के रहे हैं, छल-प्रपंच उनके रक्त में नहीं था। इसी का लाभ अंग्रेजों ने उठाया। तिलका मांझी हृदय से प्रफुल्लित था कि कंपनी सरकार ने अंततः अपनी पराजय स्वीकार कर ली और पहाड़िया समुदाय से भयभीत होकर मित्रता करना चाहती है। कैप्टन ब्राउन का साथ देने के लिये आगस्टस क्लीवलैंड था। गैर आदिवासी जमींदारों के विरोध पर भी नियंत्रण रखना ब्राउन की कूटनीति का एक हिस्सा था। यह नियंत्रण किसी प्रकार के दबाव का हिस्सा न होकर बंधुत्व के भाव का हिस्सा था जिसके कारण वह अपना पहला पड़ाव आसानी से पार कर चुका था। धीरे-धीरे कंपनी पहाड़िया समुदाय के जीवन में प्रवेश कर चुकी थी जिसकी भनक स्वयं उन लोगों को नहीं पड़ी। कैप्टन ब्राउन ने जिस बंधुता की कूटनीति का प्रयोग किया था, क्लीवलैंड ने उस पर अमल करना शुरू कर दिया था। वह उत्तरी पहाड़िया समुदाय से आपसी मेल बढ़ाने लगा था। वस्तुतः दोहरा चरित्र लिये हुए क्लीवलैंड पहाड़िया आदिवासी समुदाय का विश्वासपात्र बना। उसका प्रयोजन था पहाड़िया समुदाय की

एकता को खंडित करना। अतः उसने पहाड़िया समुदाय की एक फौज तैयार कर भागलपुर भेजा जो हिलरेंजर्स कहलाए। जिनके हाथ में धनुष-बाण शोभा देते थे, उन्हीं हाथों में बंदूक थमाकर कंपनी के हाथों की कठपुतली बनाने की योजना की गई। उसे उसके जैसे अन्य क्षेत्र के आदिवासी भाई भी मिले जिनका हिलरेंजर्स के रूप में जुड़ना क्लीवलैण्ड की धूर्त कूटनीति का ही परिणाम था। इसी दौरान उसे कंपनी सरकार के वास्तविक उद्देश्य का पता चला और उसने अपने समुदाय और पहाड़ की रक्षा के लिये कंपनी सरकार के विरुद्ध हुल की घोषणा कर दी। वह कंपनी सरकार की दृष्टि में बागी था। हिलरेंजर्स के सारे पहाड़िया आदिवासियों ने अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त पगड़ी, कुर्ता, जूते त्यागकर अपनी पारंपरिक वेशभूषा को अपना लिया था तथा तिलका मांझी के हुल में सम्मिलित हो गए थे क्योंकि अंग्रेजों की चालाकी वे समझ चुके थे। कंपनी सरकार कभी भी उन पर आक्रमण कर सकती थी। अतः तिलका के नेतृत्व में पहाड़िया दल चारों दिशाओं में बंट गए। कंपनी सरकार क्रूर दमन की नीति अपनाते हुए पहाड़िया आदिवासियों का दमन करने निकल पड़ी थी। प्रथम प्रयास में वे विफल रहे और यह तिलका मांझी की दूरगामी युद्धनीति का परिणाम था कि वे पहाड़िया आदिवासी की गुरिल्ला युद्ध नीति के जाल में फंस चुके थे। जल, जंगल, जमीन के प्रति मोह अकेले तिलका मांझी में नहीं था, बल्कि समस्त आदिवासी समुदाय में था। तिलका मांझी जब तक जीवित था तब तक हुल जारी रहा। तिलका मांझी की मृत्यु से हुल नहीं मरा था। अंग्रेजों ने सबके समक्ष तिलका को फांसी दी ताकि आदिवासी भय से आंदोलन करना छोड़ दे और उनकी अधीनता स्वीकार कर ले। लेकिन तिलका मांझी का यह आंदोलन समस्त आदिवासी समुदायों के लिये अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा साबित हुआ।

तिलका मांझी की ही भांति सिदो के नेतृत्व में संधाल हुल किया गया। भोगनाडीह गाँव का निवासी सिदो मुरमू ने आदिवासी समुदाय के लोगों के भीतर चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया तथा उन्हें संगठित कर अंग्रेजों की सत्ता के विरुद्ध आंदोलन किया। वह सखुए की तीन पत्तों वाली डाल को गाँव-गाँव में पहुँचाने लगा। जिसने भी तीन पत्तों वाली सखुए की डाली को

स्वीकार कर लिया, इसका अर्थ यह है कि वह सिदो के साथ हैं। अपना गाँव, अपना राज वापस प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न समुदाय के आदिवासी लोग सिदो के नेतृत्व में मात्र स्वायत्तता के लिये नहीं, बल्कि अपने मनुष्य होने के हक के लिये लड़ने को तैयार थे। सखुए की पत्नी मात्र अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छिड़ने का प्रतीक नहीं था, बल्कि समस्त जड़वत आदिवासी संसार में प्राण-संचार करने का भी प्रतीक बन गया था। ऐसा नहीं था कि इन्होंने शान्ति-वार्ता की पहल नहीं की। सिदो ने सर्वप्रथम प्रार्थना-पत्र अंग्रेजी अफसर सी. एफ. ब्राउन को भिजवाया था, जिसमें आदिवासियों के दुःख-तकलीफों का अंत करने की प्रार्थना सन्निहित थी। किन्तु अंग्रेजों की दृष्टि में उनकी पीड़ा का कोई अर्थ नहीं था तथा उनका शोषण जारी रहा। अतः सिदो ने हुल करने का निर्णय लिया। इसका एक कारण यह भी था ऋण न चुका पाने की स्थिति। ऋण और आदिवासी का अत्यंत गहरा नाता रहा है। इसके पीछे लार्ड कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त मुख्य रूप से उत्तरदायी सिद्ध हुआ। इस स्थायी बन्दोबस्त ने आदिवासियों की पारंपरिक खूंटकट्टी व्यवस्था और झूम खेती को समाप्त कर दिया तथा आदिवासी महाजनों और जमींदारों के शोषण का शिकार बनने को विवश हुए। ऋण के कारण आदिवासी अपनी ही जमीन के मालिक न होकर बटाईदार बने। खेत में फसल उगाने, उन्हें सींचने में आदिवासी अपना पूर्ण श्रम देते थे तब जाकर उनका श्रम रंग लाता था, किन्तु ऋण न चुकाने के बहाने महाजन सम्पूर्ण फसल पर अपना अधिकार जमा लेता था। आदिवासी केवल द्रष्टा मात्र बनकर सब कुछ देखने के अतिरिक्त और कुछ भी करने में असमर्थ थे। अतः ऋण की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या थी जिसे सिदो हमेशा-हमेशा के लिये समाप्त करने और ऋण रूपी फन फैलाए अजगर को जड़ से समाप्त करने के लिए उद्दत था। दीकुओं के लिये आदिवासियों के प्राण पशुओं के प्राण के समतुल्य था और पशुओं के प्राण लेना दीकुओं के लिए कोई अपराध नहीं था। आदिवासियों में संचय की प्रवृत्ति नहीं थी। अतः आवश्यकता के समय ऋण लेने के अतिरिक्त उनके पास मार्ग शेष बचा नहीं था। खेत अधिगृहीत होने के पश्चात् भी ऋण अदा नहीं हो पाता था तो आदिवासी महाजन के घर दास बनकर ऋण का हिसाब आद्यांत चुकाने के लिए विवश

था। यह दासत्व हस्तांतरित भी होते थे। सिदो ने उनकी इस अंतहीन पीड़ा को बहुत नजदीक से समझा था। उसके हृदय में क्षोभ और आक्रोश की ज्वाला धधक रही थी। सिदो का मानना था कि किसी पर अत्याचार करना जितना बड़ा पाप है, अत्याचार सहना उससे भी बड़ा पाप है। आदिवासी इस पाप को और ज्यादा सहन नहीं करेंगे। अतः जंगल पर अधिकार वापस प्राप्त करने के लिए दीकुओं को जंगल से भगाने का प्रण सिदो ने लिया था। इन सबने उनका सुख-चैन छीन लिया था। अतः इन्हें जंगल छोड़कर जाना होगा तभी 'अबुआ राज' का स्वप्न पूर्ण होगा। "हमारा अपना सूबा होगा। कोपनी गुरमेण्ट को अपने ऊपर नहीं मानेंगे हम। अबुआ राज का सूबा ठाकुर होगा हमारा सिदो। सूबा ठाकुर की अगुवाई में जंगल समाज के सारे गाँव-गोत्र तीर-धनुक उठावें। टांगी, भाला, फरसा, बलोया...उठावें। जंगल से सारे दीकू लोगों को भगावें हम, तभी चैन से जीएँगे हम। चैन से रहेंगे हमारे धिया-पुता। आज यही 'सिंगबोगा' चाहते हैं। यही मन है 'माराडबुरु' का अबुआ राज हमारा आशीष है...हुल करो..."¹² आदिवासियों ने यह लड़ाई किसी प्रकार की सत्ता प्राप्त करने के लिए नहीं लड़ी थी, अपितु पूर्वजों के लिए, उनकी अमर भूमि जल, जंगल के लिए यह लड़ाई लड़ी गई थी ताकि वे स्वतंत्र रूप से जंगल में बिना किसी परेशानी के निवास कर सकें। इसके लिए आवश्यक है अखंड एकता की। एकता के अभाव में किसी भी उद्देश्य को प्राप्त करना असम्भव है। आदिवासियों की लड़ाई एक दूसरे से भिन्न नहीं थी। तमाम दुःखों, अत्याचारों के भुक्तभोगी एक नहीं अपितु समस्त गाँव रहा है तो उनके सुख भी एक दूसरे से भिन्न नहीं हो सकते हैं। सिदो की एक आशा के संचार ने समस्त आदिवासी समुदायों के अन्तरंग में 'अबुआ राज' की कामना जागृत कर दी तथा बैठ-बेगार, दास-प्रथा, ऋण आदि जैसी कई समस्याओं से मोक्ष मिलने की संभावना उत्पन्न हुई। आदिवासी के पुरखे तिलका मांझी ने अंग्रेजों के विरुद्ध जिस समर की अग्नि को प्रज्ज्वलित किया था, सिदो मुरमू ने उसी अग्नि को ज्वाला बना दिया था। मरने अथवा मारने को प्रस्तुत आदिवासी प्रण ले चुके थे कि प्रत्येक स्थिति में वे अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे। देखते ही देखते सिदो की एक लम्बी सेना तैयार हुई जिसमें संताल, उरांव, मुंडा, कोल, पहाड़िया, खड़िया समुदायों के

अतिरिक्त भुईया, चमार, ग्वाले, कुम्हार, दुसाध, बढई, जुलाहे, तेली आदि जनसाधारण सम्मिलित थे। सिदो की सेना में केवल लड़ाके ही नहीं थे, बल्कि दक्ष भेदिये और गुप्तचर भी थे जो दूर अंग्रेजों की नीतियों की थाह लेकर तुरंत वायु से भी तेज गति बनाए रखते हुए अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच कर सूचित करते थे। सामान्यतः आदिवासी क्षेत्रों में जब नगाड़े बजते थे तो यह उनके शिकार करने का संकेत देता था, किन्तु सिदो के नेतृत्व में जो नगाड़े बजने लगे थे, वे नगाड़े हूल के थे, सिदो की तीन सखुए वाली पत्नी का प्रभाव था जिसका भान क्षेत्रीय जमींदारों एवं अंग्रेजी सरकारों को नहीं था। “राजा गोमके को तनिक भी चिन्ता नहीं थी क्योंकि राजा गोमके समझते थे कि बाघामुंडी के संताल प्रतिक्रिया या प्रतिशोध के बारे में सोच भी नहीं सकते। राजा गोमके इस भुलावे में थे कि उनके आभामण्डल ने सन्तालों की जीवण्णा को बूँद-बूँद सोख डाला है। सन्तालों को इस हद तक झुका डाला है कि आदिवासी अब बस टूट सकते हैं, बिखर सकते हैं परन्तु सीधे तनकर खड़े होने की ऊर्जा उनमें तनिक भी शेष नहीं है।”¹³ जमींदारों ने जोंक की भांति उनका इतना रक्त पिया है कि उनकी देह में मांस शेष नहीं था, बल्कि हड्डियों के पुतले प्रतीत होते थे।

अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य भारत में व्यापार करना था तथा शनैः-शनैः वे भारत में व्यापार से हटकर साम्राज्य एवं सत्ता स्थापित करने की ओर कटिबद्ध हुए। ‘सहायक संधि’ के रूप में छोटे-छोटे रजवाड़ों से मैत्री स्थापित की। कई देशी राजाओं और नवाब मित्रता की आड़ में इस छली नीति के शिकार हुए। इन राजाओं से मित्रता स्थापित कर इन्हें अपने अधीन कर दास बनाने की प्रथा लार्ड वैलेस्ली ने लागू की। वैलेस्ली ने अपनी कार्यविधि के अंत तक भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एकाधिपत्य मजबूत कर दिया था जिसे व्यापार के साथ-साथ राजनीतिक शक्तियाँ भी प्राप्त हो चुकी थी। भारत के लगभग सभी देसी रियासतों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु भारत के आदिवासियों ने अंग्रेजी सत्ता स्वीकार करने से मना कर दिया था। लेकिन जब से कम्पनी सरकार ने आदिवासियों को अनाज उगाने के स्थान पर नील की खेती करने का आदेश दिया है तबसे आदिवासियों पर अंग्रेजों के शोषण में वृद्धि

हुई। सिदो का हुल इन रक्त चूसक नील अफसरों को रक्त रंजित करते हुए आगे बढ़ता जा रहा था तथा जितने भी आदिवासी नील कोठी के गोदामों में बन्दी बने हुए थे, सबको मुक्त कर दिया। सिदो का हुल आगे बढ़ता ही जा रहा था। जब 'हुल' की हवा गाँव-गाँव से निकल कर शहर तक बढ़ी तब अंग्रेजी प्रतिष्ठित अफसरों को वास्तविकता का ज्ञान हुआ कि संताल आदिवासियों का हुल केवल संतालों का नहीं था, बल्कि यह प्रथम 'जन संगठित' आंदोलन था जो समस्त आदिवासी समुदायों के संगठन में एक सामुदायिक आंदोलन का रूप ले चुका था और निरंतर महाजनों पर विजय प्राप्त कर अंग्रेजों के लिए घातक बनने को आतुर था। कम्पनी सरकार इस आंदोलन का दमन करने के लिए हर संभव प्रयत्न करने के लिए प्रतिबद्ध थी। सिदो और उसके भाइयों पर इनाम राशि को अंग्रेजी सरकार ने बढ़ा दिया था जिसके लोभ में सिदो के लड़ाके दल में से पाँच संताल युवक फंस गए थे और भेदी बनकर सिदो को अंग्रेजों के हाथों सौंप दिया। चाँद और भैरव अंग्रेजों की गोली के शिकार बन चुके थे तथा सिदो और कान्हू को फांसी की सजा सुनाई गई। 21 दिसंबर 1855 को कान्हू को फांसी दे दी गई और 5 फरवरी 1856 को सिदो को फांसी दे दी गई। इतिहास में उसका नाम एक विद्रोही के रूप में अंकित है, लेकिन वह तो 'अबुआ राज' के लिए लड़ा और शहीद हुआ। मृत्यु के साथ-साथ हुल समाप्त नहीं हुआ था। उन्होंने सबके अन्तर्मन में हुल की लौ को जीवित रखा।

ब्रिटिश शासन के अत्याचार व शोषण के खिलाफ जहाँ झारखंड के आदिवासी समुदाय एकत्रित होकर आंदोलन कर रहे थे, वहीं राजस्थान के भील-मीणा आदिवासी लोगों ने अंग्रेजों के हस्तक्षेप से उत्पन्न संकट का विरोध किया जिसका नेतृत्व गोविंद गुरु कर रहे थे। एक बंजारा परिवार में जन्म लेने के बावजूद उनका रहन-सहन, संस्कार आदिवासियों जैसा रहा है। वे उन्हीं के बीच पले-बड़े हुए थे और उनकी जीवन-शैली तथा समस्याओं को करीब से देखा। उन्होंने समाज के अंदर तथा बाहर की समस्त बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाया। अतः उन्होंने संपसभा का गठन किया और लोगों में चेतना जगाने का कार्य किया। वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। विभिन्न कानूनों के माध्यम से देसी रियासतों

में उनकी पैठ बनती जा रही थी। देसी रियासतें अंग्रेजों की कठपुतली मात्र थी। अर्थार्जन के स्रोत में वृद्धि करने के तरीकों को अपनाया गया तथा कर-व्यवस्था, वन उत्पाद, नमक उत्पादन और व्यापार पर नियंत्रण आदि के माध्यम से अंग्रेजों ने अपना आर्थिक आधार मजबूत किया जिसका आदिवासियों ने विरोध किया क्योंकि ये उनके जीवन के मुख्य स्रोत थे। दूसरी बात यह है कि “उनकी स्वायत्तता पर यह आघात था जिसे वे बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों की यह चाल थी कि आर्थिक शोषण की उनकी नीतियों के विरोध स्वरूप जो हालात बनें उनकी जिम्मेदारी देसी नरेशों पर थोपी जाये और उपद्रवों को निबटने में सफल न होने पर उन्हें असक्षम व अकुशल सिद्ध किया जाकर कौंसिलों के माध्यम से अपना राजनीतिक हस्तक्षेप चालू रहे।”¹⁴ आदिवासियों से जबरन बेगार लिया जाता था जिसका गोविंद गुरु ने विरोध किया। उनका कहना था कि बिना पारिश्रमिक के बेगार करना एक प्रकार का दासत्व है। अतः उन्होंने बेगार करने का विरोध किया। आदिवासियों ने तीन स्तरों पर औपनिवेशिक भारत में लड़ाइयाँ लड़ी। पहला और सबसे बड़ा अंग्रेजी उपनिवेशवाद है जिसके खिलाफ आदिवासी आंदोलन कर रहे थे। दूसरा भारतीय सामंतवाद के खिलाफ भी लड़ाई लड़ी और तीसरा जो भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियाँ हैं और ये कुरीतियाँ आदिवासियों तक भी पहुँच गईं जिसके खिलाफ गोविंद गुरु ने लड़ाई लड़ी। इसी लड़ाई के दौरान आदिवासी इकट्ठे हुए और मानगढ़ की पहाड़ी पर सुधार आंदोलन को आगे बढ़ा रहे थे। तभी ब्रिटिश सेना ने उनको चारों तरफ से घेर लिया जिसमें 1500 लोगों के मारे जाने का अनुमान है। कुछ इलाज के अभाव में मारे गए। कई आदिवासियों को गिरफ्तार किया गया। इस प्रकार अपनी स्वायत्त व्यवस्था को बरकरार रखने के लिए भील आदिवासियों ने ब्रिटिश ताकतों से लोहा लिया जिसके प्रति इतिहास मौन दिखाई देता है।

अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त भारत एक स्वच्छंद और स्वतंत्र भारत था और इस देश के वासी भी स्वतंत्र थे, समस्त दासत्व से आजाद थे, किन्तु आदिवासी पूर्ववत् दासत्व का जीवन जीने को विवश थे। यद्यपि स्वाधीनता के पश्चात् जमींदारी प्रथा का अन्त हो गया था,

किन्तु महाजनों एवं साहूकारों का शोषण पूर्व से भी अत्यधिक विकराल रूप ले चुका था और उनका संघर्ष जारी रहा। उन्हें शोषण और संघर्ष से मुक्ति ही नहीं मिली। इसका मुख्य कारण है कि आदिवासी गैर आदिवासियों से भिन्न हैं। श्रम को लेकर भिन्नता है, ईश्वर को लेकर भिन्नता है, स्त्रियों की स्थिति में भिन्नता है। जंगल में कई तरह के भयानक पशुओं की सघनता है, किन्तु आदिवासियों को उन पशुओं से अधिक उन महाजनों, साहूकारों से भय था, जो आदिवासियों का अस्तित्व निर्मूलतः नष्ट करना चाहते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् सब कुछ बदला, व्यवस्था परिवर्तित हुई, किन्तु आदिवासियों पर शोषण करना समाप्त नहीं हुआ। केवल शोषण करने के ढंग में जबरदस्त परिवर्तन आया - “शोषण-उत्पीड़न खत्म नहीं हुआ, सिर्फ उसका तरीका बदल गया है। अब हमसे कोई जबरन बेगार नहीं करवाता है, लेकिन परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बन जाती हैं कि हमारे लोग खुद बेगार करने पहुँच जाते हैं। जंगल हमारा नहीं रहा, जमीन छिनती जा रही है और हम बेबस रहने के सिवा कुछ नहीं कर पा रहे हैं...”¹⁵ आदिवासियों की जमीन के मालिक बहिरागत बन बैठे। व्यवसाय करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में राजपूत, मारवाड़ी, भूमिहर, ब्राह्मण, कायस्थ, कुम्हार आदि ने आदिवासी क्षेत्रों में प्रवेश किया और छल-कपट से आदिवासियों की रक्त-स्वेद से सींची भूमि के दावी बन गए। पुलिस एवं प्रशासन व्यवस्था की सहायता ने उनके (दीकू) भूमि के मालिकाना अधिकार को और विस्तृत किया। “नियम है कि दस वर्ष तक मालगुजारी नहीं देने पर सरकार जमीन को नीलाम करवा देती है। जमींदार करता यह था कि रैयत से मालगुजारी प्राप्त होने के बावजूद उसे खजाने में जमा नहीं करता और बाद में नीलामी करवाकर उस जमीन को खुद अपने या अपने किसी व्यक्ति को खरीदवा देता है।”¹⁶ उनकी स्थिति बेहतर होती गई और आदिवासी उनके विपरीत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में रहने को विवश हो गए। ‘समर शेष है’ उपन्यास में सोबरन मांझी आदिवासी समुदाय के हित के लिए समर्पित एवं प्रतिबद्ध दृष्टिगोचर होते हैं। नरसिंहडीह से तीन-चार फर्लांग दूर एक आदिवासी गाँव नेमरा के रहने वाले सोबरन मांझी ने महाजनों की प्रताड़ना को अत्यंत नजदीक से देखा और अनुभव किया था। अशिक्षा के अंधकार के गर्त में डूबे समाज में से कोई

शिक्षित होकर उठने का प्रयास करता है तो उच्च वर्ग अथवा मुख्यधारा वर्ग के लोग उसकी शिक्षा का उपयोग उसके अपने समुदाय के विरुद्ध करता है। सोबरन एक शिक्षित युवक होने के साथ-साथ, उसमें बाहरी जगत को देखने-समझने का बोध था। उसे रामगढ़ स्टेट वालों ने अपने क्षेत्र में लगान वसूलने, राजा की जमीन की बन्दोबस्ती आदि कार्य का जिम्मा सौंपा गया था जिस पर उसे गर्व का अनुभव होता था। किन्तु राजनैतिक दाँव-पेंच के ज्ञान ने उन्हें अपने समुदाय की वास्तविक अवस्था को देखने की एक नई दृष्टि प्रदान की और वे जीविकोपार्जन के लिए स्कूल में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। अपने क्षेत्र के प्रमुख चेतनास्त्रोत, अगुवा के रूप में बिष्टू साव-रूपा प्रसंग के पश्चात् उभरे। यहाँ से उनका जीवन एक नया मोड़ लेता है। अपने और अपने समुदाय के अधिकार के लिए लड़ने की एक अद्भुत शक्ति का अनुभव करते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम जनसाधारण को संगठित करने का कार्य किया और उनमें चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। प्रथमतः उन्होंने महाजनों के कुचक्रों से परिचित करवाया जो ऋण के चंगुल में फंसाकर आदिवासियों की जमीन निगल लेने को तत्पर रहते हैं। उन्होंने सालखन और महाजन बिष्टू साव का उदाहरण देते हुए इस तथ्य से अवगत कराया है कि बिष्टू साव का ही षडयंत्र था - रूपा को डाइन साबित करना, सालखन और कार्तिक द्वारा रूपा की हत्या करना तथा सालखन और कार्तिक को मुकदमे में फंसाकर रूपा की जमीन हड़पना। सोबरन का कहना था - “जोंक की तरह चिपक गए हैं वे हमसे, हमारे शरीर का सारा खून पी लेना चाहते हैं।...उन्हें गाँव में घुसने मत दो। दिख जाएँ तो बोरे से ढककर उसी तरह मारो जैसे सूअर को मारा जाता है और सुन लो, गाँव के आसपास एक भी शराब की भट्ठी न रहे। उन्हें साफ कर दो। डरने की बात नहीं। यह हमारी दुनिया है। बाहर के किसी ने हस्तक्षेप किया तो उन्हें निकाल बाहर करेंगे यहाँ से।”¹⁷ शनैः-शनैः सोबरन महाजनों के आँख का काँटा बनते जा रहे थे। उन्हें भय सताने लगा था कि सोबरन समस्त जनता को उनके विरुद्ध भड़काने के प्रयास में सफल हो सकते हैं। अतः षडयंत्र द्वारा सोबरन मांझी की हत्या कर दी जाती है। पुलिस की सहायता से (रिश्वत देकर) महाजन बिष्टू साव और उसके पिता नंदू साव जमानत पर जेल से छूटकर आ

जाते हैं। सोबरन की हत्या के पश्चात् जनाक्रोश के स्थान पर सर्वत्र भय व्याप्त था। सोबरन की पत्नी सोनामणि को न्याय-प्रशासन से कोई सहायता नहीं प्राप्त हुई और जिस अग्नि को सोबरन ने आदिवासी लोगों में प्रज्ज्वलित किया था, उस अग्नि को सोनामणि ने अपने पुत्रों (राजाराम और शिबू) में जलाए रखा। बाबा ने शिबू से कहा - "इस घृणा को, इस आक्रोश को इस तरह बर्बाद न जाने दे शिबू। इसे संजोकर अपने भीतर रख। जीवन के कठिन और संघर्षपूर्ण रास्तों पर यह तुम्हारा संबल बनेगी। दाँत कटकटाती ठंडी रातों में यह तेरे जिस्म को गरम रखेगा; और याद रख, तेरा दुश्मन बिष्टू साव और हेडबरगा गाँव नहीं, वे तमाम लोग हैं जो हमारी धरती हमसे छीन रहे हैं, हमें हमारे जंगल से बेदखल कर रहे हैं। तभी तुम हमारे जिस्म से लिपटे और उसका खून चूस रहे उन अनगिनत बिष्टू साव और हेडबरगा गाँव को देख सकोगे।"¹⁸ ये कथन केवल बाबा के नहीं हैं, बल्कि उन समस्त आदिवासी समूह के हैं जिन पर आंतरिक उपनिवेशवादी ताकतों का शासन रहा है। विष्टू साव हेडबरगा में अकेला महाजन नहीं था, उसके जैसे कई संख्या में महाजन थे और आदिवासी क्षेत्रों में महाजनी शोषण स्थापित था। इतिहास साक्षी है कि शोषण के विरुद्ध आदिवासियों ने संघर्ष की लंबी यात्रा तय की है और उनका यह संघर्ष जारी है। महाजनी शोषण के विरुद्ध सोबरन मांझी ने आवाज उठाई और उसे लक्ष्य (अंजाम) तक शिबू सोरेन ने पहुंचाया। प्रशासन एवं न्याय व्यवस्था ने दुर्दिन के क्षणों में कभी भी आदिवासियों का साथ नहीं दिया और न ही सहभागिता दर्शाई। देश का कानून सभी को समान समझता है और समान दृष्टि से देखता है, किन्तु उसी समानता को वर्ग भेद के कारण व्यवहार में नहीं लाया जाता है। व्यवहार में केवल शोषण को लाया जाता है - एक बड़े वर्ग द्वारा छोटे तबके के लोगों का शोषण। इस शोषण का कोई अन्त नहीं, अपितु पुलिस-प्रशासन उनके इस शोषण में वृद्धि लाते हैं। सोबरन मांझी की हत्या से पूरे गाँव में आतंक का माहौल व्याप्त था, किन्तु शिबू ने जनसाधारण के अन्दर उसी चेतना का मंत्र फूँका जिस चेतना की मशाल को शिबू के पिता सोबरन ने जलाया था। जमीनों की अंधाधुंध कटाई को देखते हुए अंग्रेज कमिश्नर मिस्टर व्हीट ने सन् 1883 में सावधान कर दिया था कि दक्षिण

बिहार के पठारी अंचल तथा छोटानागपुर पठार के निचले भाग से सटे बंगाल के जंगल नष्ट हो जाएंगे। मिस्टर व्हीट के अतिरिक्त अंग्रेज डॉ. सेचलिच ने सन् 1885 में अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि राँची और हजारीबाग जिलों के वनों की संख्या में अत्यधिक कमी आ रही है। अंग्रेज अफसरों की चिन्ता इस बात को सिद्ध नहीं करती है कि वे वन संसाधन की रक्षा के प्रति आतुर थे। “वे तो चाहते यह थे कि यह मूल्यवान वस्तु में बदल चुका जंगल ग्रामीणों के हाथों ‘बर्बाद’ होने से बचे और जमींदारों के काम आए, लेकिन जमींदार भी उनका विनाश इस रूप में न करें कि वे हमेशा के लिए खत्म हो जाएँ। उन्हें लगता था कि इससे मूलवासियों का असंतोष भड़केगा और बिरसा-विद्रोह जैसा कोई आन्दोलन भी हो सकता है।”¹⁹ अंग्रेज चले गए किन्तु देशी सत्ताधारी अंग्रेजों के बनाए मार्ग पर ही चलते रहें। जंगल पर आदिवासियों को अधिकार वापस प्राप्त नहीं हुआ, अपितु जंगल के व्यवसायिकरण पर सरकारी मुहर लग गई अर्थात् जंगल पर सरकार का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस प्रकार आरक्षित वन सरकारी क्षेत्र बन गया और जो व्यक्ति इस आरक्षित वन से लकड़ियाँ ले जाने का प्रयास करता तो उससे जबरन रिश्वत वसूला जाता और रिश्वत के रूप में पैसे न देने पर जेल भेज दिया जाता था - “छोटानागपुर के विभिन्न जेलों में उस वक्त सर्वाधिक कैदी ऐसे थे, जो वन-कानूनों को तोड़ने के आरोप में जेल में बंद थे। एक बार गिरफ्तार हो जाने के बाद उनकी जमानत लेने वाला भी बहुधा कोई नहीं आता और जब तक सुनवाई शुरू होने की नौबत आती तब तक वे इतना समय जेल में काट लेते, जितनी की उन्हें जेल भी नहीं होती।”²⁰ आदिवासी सदियों से जंगल के विभिन्न क्षेत्रों में एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते रहे हैं। पर्वत, पहाड़ों के मध्य इन्होंने अपना गाँव बसाया। इन्होंने प्रकृति के वरदान और अभिशाप दोनों को सहन किया, तब जाकर प्रकृति से तालमेल स्थापित किया। उन्होंने प्रकृति के नाना रूपों का अंगीकार करते हुए जीवनयापन किया। उदाहरणस्वरूप संधाल, बिरहोड़, खड़िया, मुंडा, हो इत्यादि भिन्न समुदाय सहित भिन्न-भिन्न गोत्र भी आदिवासी समाज में होते हैं, किन्तु इस भिन्नता ने किसी प्रकार के भेदभाव को जन्म नहीं दिया। आदिवासी समाज में न कोई उच्च होता है और न निम्न -

“न शोषक और न शोषित। सब खटने खाने वाले लोग। यहाँ कोई किसी अन्य के श्रम का शोषण नहीं करता। हाँ जिसके हाथों में ज्यादा ताकत है, जिसके परिवार में ज्यादा हाथ हैं उसके पास कुछ ज्यादा जमीन और कुछ के पास अपेक्षाकृत कम जमीन लेकिन इसके अलावा उनमें कोई अन्तर नहीं।”²¹ बाहरी समुदाय के लोग आदिवासियों की भांति परिश्रम नहीं कर सकते। उन्होंने आदिवासी क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश कर आदिवासियों की निश्छलता का लाभ उठाया और उनके अधिकार को जब्त कर सुविधापरक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सोबरन मांझी ने इन सबका विरोध किया, अतः उनकी हत्या कर दी गई। उनके पुत्र शिबू सोरेन ने इस संघर्ष को वृहद रूप प्रदान किया। उनका साथ समस्त आदिवासियों और कुछ बौद्धिक गैर आदिवासी व्यक्तियों ने दिया और शिबू के साथ था यह विराट जंगल जिसकी छत्रछाया में वह पला-बड़ा था। जंगल से उसका वही नाता था जो एक आदिवासी का होता है। आजादी से पूर्व अंग्रेजों का कोयला खदानों पर आधिपत्य था, आजादी के पश्चात् उन कोयला खदानों को मारवाड़ी, पंजाबी, गुजराती के एक बड़े वर्ग ने खरीद लिया और वे इसके मालिक बन बैठे। मजदूरी की संख्या में 80 प्रतिशत अस्थानीय मजदूर थे जो अन्य क्षेत्रों से लाये गए थे। अतः बड़ी मात्रा में मजदूर उत्पन्न होने लगे। आदिवासियों के पास पर्याप्त भूमि थी कि जिससे वे रहने के लिए घर बना सके और खेती कर सके। अतः खदानों में मजदूरी करने को वे हेय समझते थे। किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें मजदूरी करने पर विवश कर दिया। शिबू ने अपने आंदोलन की शुरुआत सुदर्शन भगत को अपहरण कर किया। सुदर्शन भगत पड़ोस के गाँव में जाकर कुआँ बनवाने के लिए आवेदन पत्र पर कुछ आदिवासी लोगों के अंगूठा का चिन्ह लेकर बैंक से सारा रुपया ले लेता है। किन्तु जब बैंक का कर्ज लौटाने की बात आती है तो बैंक के अफसर ने कहा कि किसी सुदर्शन भगत ने बैंक से कर्ज नहीं लिया। कर्ज अंगूठा लगाने वाले कुछ आदिवासियों ने लिया था जबकि कर्ज में से एक भी रकम उन लोगों को नहीं मिली थी। बैंक ने कर्ज न चुकाने पर मुकदमा करने की चेतावनी दी। बीडीओ अफसर स्वयं शिबू के पास आकर सुदर्शन भगत के इस कृत्य की भर्त्सना करते हैं और इस अपराध की जाँच-पड़ताल स्वयं करने का आश्वासन

देते हैं। इस प्रकार शिबू अपने गाँव में अगुवा के रूप में उठते हैं। आदिवासियों के भावी नेता के रूप में शिबू सोरेन एक नई आशा की किरण के रूप में नजर आते दिखाई देते हैं। शिबू सोरेन के नेतृत्व में आदिवासी संगठित होते हैं और महाजनों के सामंती स्वरूप तथा शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करते हैं। उनके लिए कोई भी गलत एवं घृणित कार्य असहनीय थी। उन्होंने रूपा की जमीन को हड़पकर खेती करने वालों की खेत की कटाई का निर्णय लिया और यहीं से उनके जीवन ने एक ऐतिहासिक मोड़ लिया। इतिहास में प्रसिद्ध 'धनकटनी आंदोलन' शिबू द्वारा संचालित किया गया एक प्रसिद्ध आंदोलन था जो रूपा की जमीन से शुरू हुई थी। गाँव एवं पड़ोसी गाँव के लोग शिबू के प्रति भरोसा रखने लगे थे। अतः सब इसके लिए तैयार थे। महाजनों द्वारा छीन ली गई आदिवासियों की जमीन पर धनकटनी करना शिबू के 'धनकटनी आंदोलन' का हिस्सा था। इस प्रकार आंतरिक उपनिवेशवाद के खिलाफ एक सफल जननेता के रूप में शिबू सोरेन ने नेतृत्व किया।

आदिवासियों ने जल, जंगल, जमीन पर मालिकाना हक के सपने लेकर आंदोलन किया था और संघर्ष को एक मुकाम तक पहुंचाया। इन्होंने आदिवासियों की संस्कृति, जीवन दर्शन की रक्षा के लिए विरोधी शक्तियों से विद्रोह किया। उदाहरण के तौर पर तिलका मांझी ने आजाद देश का स्वप्न देखा था जिसे साकार करने के लिए पहाड़िया आंदोलन सन् 1784 में किया जिसमें उन्होंने जन संगठन का कार्य किया। हालांकि यह आंदोलन सफल नहीं हो पाया क्योंकि अंग्रेजों द्वारा उन्हें फांसी दे दी गयी। लेकिन यह इतिहास का सबसे पहला आदिवासी जन संगठित आंदोलन था। इसके बाद इसी तरह का दूसरा जन संगठित आंदोलन 'संथाल हूल' देखने को मिलता है। सखुए की तीन पत्नी आदिवासी एकता का प्रतीक बन गया था। सिदो का मानना था कि अन्याय करना जितना बड़ा पाप है, अन्याय सहना भी उससे बड़ा पाप है। यह समस्त आदिवासी समुदायों के जीवन का मूल मंत्र है। अंग्रेजों से स्वतन्त्रता मिलने के बाद अन्याय और शोषण से मुक्ति नहीं मिली, बल्कि महाजनों के बढ़ते प्रभाव से आदिवासी जीवन तबाह हो गया। सोबरन मांझी, शिबू सोरेन के नेतृत्व में किये गए संघर्ष इसके प्रमाण

हैं। संसदीय राजनीति का हिस्सा बनने के बाद आदिवासी जनप्रतिनिधियों के नेतृत्व करने की कार्य प्रणाली शिथिल पड़ती दिखाई देती है जिसके कारणों की चर्चा आगे की जाएगी।

iii) क्षेत्रीय राजनीति बनाम राष्ट्रीय राजनीति

यदि आदिवासियों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि उनका इतिहास आंदोलनों से भरा हुआ है। स्वतन्त्रतापूर्व औपनिवेशिक काल में आदिवासियों ने अपने जल, जंगल, जमीन, अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेक लड़ाइयाँ लड़ी। तिलका मांझी के नेतृत्व में पहाड़िया आंदोलन, सिदो के नेतृत्व में हूल आंदोलन, बिरसा मुंडा के नेतृत्व में उलगुलान आदि ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिसने एक बड़ा जनांदोलन का रूप लिया। वर्तमान में भी वे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं। जल, जंगल, जमीन के लिए उन्होंने सदियों से संघर्ष किया और उनका यह संघर्ष आज भी जारी है। वस्तुतः भूमि का सवाल आदिवासियों के अस्तित्व से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। आदिवासी विकास से संबंधित कई योजनाएँ लागू की गईं और की जा रही हैं जिसके कारण विस्थापन तथा पुनर्वास की समस्या उभर कर सामने आई है। फिर भी उनकी समस्याओं का निदान नहीं हुआ और अपने जल, जंगल, जमीन को बचाने के लिए संघर्षरत हैं। राष्ट्रीय पटल पर आदिवासी जनप्रतिनिधि भी मौजूद हैं, फिर भी आदिवासी मुद्दों को राष्ट्रीय पहचान नहीं मिली। आगे इसके कारणों पर प्रकाश डाला जाएगा।

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि आदिवासी समुदाय में कई ऐसे जनप्रतिनिधि उभरकर सामने आए जिन्होंने अपने जीवन और संस्कृति की रक्षा के लिए विरोधी ताकतों से लोहा लिया। किन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ नेतृत्वकर्ता के लिए उद्देश्य भी परिवर्तित हो गया है। आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी क्षेत्र में आदिवासियों और गैर आदिवासी राजनेताओं के एक साथ कार्य करने की प्रणाली को दर्शाया गया है। आदिवासी प्रतिनिधि के इर्द-गिर्द गैर आदिवासी कार्यकर्ता अधिक देखे जाते हैं। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों में आदिवासी कार्यकर्ताओं की संख्या न्यूनतम है। न्यूनतम संख्या के कारण आदिवासी समस्याओं को आवाज नहीं मिलती है। गैर आदिवासी राजनीतिज्ञ विभिन्न सामाजिक मसलों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, लेकिन आदिवासी मसलों पर उनका ध्यान नहीं जाता है अथवा इन मसलों को चिंतन का विषय बनाया ही नहीं जाता है। दूसरी बात, जिस 'फूट डालो राज करो' की नीति

अंग्रेजों ने अपनाई थी, उसी का प्रणयन राजनीतिक क्षेत्र में किया जाता है। परिणामस्वरूप आदिवासी प्रतिनिधि एकजुट होकर विभिन्न मसलों को राष्ट्रीय पटल पर नहीं रख पाते हैं।

नाम और पहचान का बड़ा महत्व होता है जो आदिवासी नेतृत्वकर्ताओं को कभी प्राप्त नहीं हुआ है। क्षेत्रीय स्तर पर उनके योगदान अविस्मरणीय है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर तक आते-आते उनके कार्य करने की प्रणाली शिथिल पड़ जाती है। इसका एक कारण यह है कि राष्ट्रीय फलक पर न तो उन्हें ऊँचा पद दिया गया और न ही पहचान निर्मित हुई। आदिवासी वोट प्राप्त करने के लिए राजनीतिक पार्टियां आदिवासी जनप्रतिनिधि को अपनी पार्टी में शामिल तो कर लेती हैं। उन्हें स्वतंत्र रूप से आदिवासियों के लिए कार्य करने का वायदा भी करती हैं। लेकिन उन्हें उच्च पदों से वंचित अथवा अलग-थलग ही रखा जाता है। इस प्रकार आदिवासी नेताओं को राष्ट्रीय पटल तक बढ़ने का अवसर ही नहीं दिया गया। उदाहरण के रूप में जयपाल सिंह मुंडा को लिया जा सकता है। झारखंड को एक राज्य के रूप में देखने की इच्छा आदिवासी समुदाय को प्रारंभ से ही थी। 1915 से ही इसे अलग राज्य के रूप में स्थापित करने की मांग उठाई जा रही थी। लेकिन इस मुद्दे को जयपाल सिंह मुंडा ने राष्ट्रीय रूप प्रदान किया। 1950 में झारखंड पार्टी की स्थापना के पश्चात् झारखंड अलग राज्य की मांग तेज हुई। लेकिन श्री मुंडा के कांग्रेस में शामिल होने के बाद आंदोलन शिथिल हो गया और उनकी संगठित झारखंड पार्टी में बिखराव उत्पन्न हो गया। इस तथ्य को लेखक विनोद कुमार ने 'समर शेष है' उपन्यास में उजागर किया है - "1952 के प्रथम चुनाव में झारखंड क्षेत्र में जयपाल सिंह की पार्टी को कुल 32 सीटें प्राप्त हुई थी और वह बिहार विधानसभा में मुख्य प्रतिपक्षी पार्टी बनी थी। लेकिन बाद में प्रधानमंत्री पं. नेहरू के आश्वासन पर भरोसा कर जयपाल सिंह ने झारखंड पार्टी का विलय कांग्रेस में कर दिया। वादे के मुताबिक जयपाल सिंह को अलग झारखंड राज्य तो नहीं मिला, लेकिन उनकी शक्तिशाली झारखंड पार्टी छिन्न-भिन्न हो गई।"²² ध्यातव्य है कि किसी भी मसले को राष्ट्रीय आकृति प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्तर के नेतृत्वकर्ता की उपस्थिति महत्वपूर्ण होती है ताकि मुद्दों को लेकर अपनी बात की जा सके। लेकिन आदिवासी प्रतिनिधि

आवश्यक मसलों एवं हित को दरकिनार कर राजनीतिक दलों से हाथ मिला लेते हैं और उनके उद्देश्यों को अपना कार्य समझकर स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार उनमें एक प्रकार के भटकाव की स्थिति दिखाई देती है और आदिवासी मसला राष्ट्रीय पटल तक आते-आते छिन्न-भिन्न हो जाता है। विनोद कुमार ने अपने उपन्यास 'समर शेष है' और 'रेड जोन' में बताया है कि अधिकांश नेतृत्वकर्ता राजनीतिक पार्टी में शामिल होकर आगे बढ़ने के बजाए उसमें खोकर रह गए और उनका अस्तित्व लुप्तप्राय हो गया। चाहे जयपाल सिंह मुंडा हो अथवा अन्य राजनीतिज्ञ, सभी राजनीतिक पार्टी में शामिल होकर विलीन हो गए। आदिवासी समुदाय के मसलों को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करने का स्वप्न केवल स्वप्न ही बनकर रह गया।

आदिवासियों के अधिकारों और उनकी भलाई के बारे में विचार रखने तथा आवाज उठाने वाले को राष्ट्रीय दल अपनी पार्टी में सम्मिलित नहीं करती है। वे तो उन्हीं को पार्टी में मिलाते हैं जो उनके हर कार्यों में साथ दे और उनका विरोध न करे। जिस क्षेत्र में समस्या होती है उस क्षेत्र के आदिवासी अपनी समस्याओं का निदान पाने के लिए संघर्ष करते हैं। उनके जीवन की सामूहिकता, सहजीविता, सह-अस्तित्व, समानता, स्वतन्त्रता इत्यादि क्षेत्र तक ही सीमित रहे। उनके इतने मूल्यवान जीवन-दर्शन क्षेत्र से बाहर लोगों के बीच प्रचारित नहीं हो पाया और उन्हीं तक सीमित रह गया। यही कारण है कि उनकी समस्या राष्ट्रीय फलक का हिस्सा नहीं बन पाया और उनकी आवाज दब कर रह गई। साथ ही आदिवासी जननायक जो भी चुनावी रणनीति अपनाता है उसका स्वरूप गैर आदिवासी द्वारा अपनाई गई रणनीति से अलग नहीं होता है। अर्थात् चुनाव लड़ने की प्रक्रिया या नीति एक जैसी होती है। इसके लिए एक जैसी रणनीति अपनायी जाती है। सत्ता प्राप्त करने की यह लड़ाई सदियों से चली आ रही है। 'रेड जोन' उपन्यास में विनोद कुमार ने बताया है कि कालीचरण और दुर्गा दोनों ही सत्ता के शिकार बनते हैं। कालीचरण विस्थापितों के पुनर्वास और नौकरी के मुद्दे को प्रशासन के समक्ष रखता है और उस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज भी उठाता है, लेकिन उसकी आवाज को दबा दिया जाता है। उस व्यवस्था के विरुद्ध उसका संघर्ष निरंतर जारी दिखाया गया है। देखा जाए तो चुनावी

दावेदार की पूरी जिम्मेदारी जनता पर होती है। जनता अपने अनुसार सरकार बनाती है अर्थात् वोट देकर सरकार चुनती है। उनके द्वारा चुने गए नेता ही जनता को स्वप्न-संसार दिखाते हैं और सत्ता में आने के बाद अपने स्वार्थपूर्ति में लग जाते हैं। जब तक वे लोग सत्ता में नहीं आते तब तक जनता की भलाई करते रहते हैं और चुनाव जीतने के लिए गैर-कानूनी तरीका अपनाते हैं। उन्हीं की चापलूसी की जाती है जिनका उन्हें पूर्ण समर्थन मिलता है क्योंकि “वे मुट्ठी भर लोगों के वोट से सत्ता पर काबिज हो जाते हैं। औसतन 45 से 50 फीसदी मतदान होता है और बहुमत में आने वाली पार्टी 25 से 30 फीसदी वोट प्राप्त करती है। और इतने से वोट को प्राप्त करने के लिए भी जात-पांत, गुंडागर्दी और पैसे का इस्तेमाल होता है। इसलिए हमारा जन प्रतिनिधि हमारा नहीं रह जाता। वह आम जनता के हितों के प्रति बेपरवाह हो जाता है और अपना तथा उन लोगों का हित साधन करने लगता है जिनसे उसे पैसा और ताकत प्राप्त होती है।”²³

जब कोई व्यक्ति राजनीति से जुड़ता है या संसद में आता है तो वहाँ के तौर-तरीकों को अपनाना पड़ता है। उस व्यवहार को अपनाने की विवशता हो जाती है। विनोद कुमार ने अपने उपन्यास ‘रेड जोन’ में यह बताया है कि गुरुजी इस व्यवहार को अपनाने के लिए विवश हैं, लेकिन वे अपनी विवशता को किसी से कह नहीं पाते हैं। एक दिन कालीचरण के पिता और अन्य मजदूरों की मृत्यु दुर्घटना में हो जाती है और उनके सगे-संबंधी मुआवजे और नौकरी की मांग करते हैं। इस संबंध में गुरुजी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वे प्रबंधन से बातचीत करेंगे। अगर कुछ नहीं हो पाया तो आंदोलन होगा। पर कालीचरण गुरुजी के आवास पर ठेकेदारों को उनके इर्द-गिर्द देखकर आश्चर्यचकित रह गया और तभी से वह गुरुजी का प्रबल विरोधी हो गया।

राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी प्रतिनिधि की भागीदारी बहुत अधिक नहीं है। संसद में जितनी आवाज पहुंचनी चाहिए उतना उनका प्रतिनिधित्व नहीं है। आवाज पहुँचने से पहले ही दबा दी जाती है। विस्थापितों की समस्याओं और मांगों को लेकर कालीचरण प्रशासनिक भवन

के सामने प्रदर्शन करता है और नारेबाजी लगाता है। कंपनी अधिकारी के साथ बैठक तो हुई, किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। इसके बाद उनलोगों ने अनशन किया तो बात नहीं बनी और उनका कोई नेता न होने के कारण आंदोलन असफल हो गया। संसदीय लोकतन्त्र का हिस्सा होने के कारण धीरे-धीरे आदिवासी जनप्रतिनिधियों के अंदर कार्य करने की अंदरूनी शक्ति समाप्त होने लगती है। उन पर से सामान्य जन का विश्वास धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था। वे लोग चुनाव जीतने के लिए संसदीय राजनीति का अपरिहार्य तिकड़म और समझौता करते नजर आते हैं। गुरुजी कालीचरण और अन्य विस्थापितों को भू-माफियाओं के चंगुल से उनकी आवासीय कॉलोनी दिलाने के मामले में वे कुछ नहीं कर पाएँ क्योंकि उन्हें गैर आदिवासियों से मतदान मिलते थे। उक्त कथन की पुष्टि इन पंक्तियों द्वारा होती है - “जब चास की उक्त जमीन को मुक्त कराना था। अधिकतर स्थानीय नेता इस सवाल पर खामोश थे। मुक्ति मोर्चा के कार्यकर्ता तो सक्रिय थे लेकिन गुरुजी ने मौन साध लिया था। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं आदिवासी विस्थापितों के पक्ष में उन्हें सक्रिय देख कर गैर-आदिवासी आबादी उनसे बिदक न जाए।”²⁴

आंदोलन करने, जुलूस के लिए लोगों को तैयार करने और पोस्टर लगाने आदि के लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। कोई भी कार्य करने के लिए धनराशि की आवश्यकता होती है। गुरुजी ने मानव को बताते हुए कहा कि आंदोलन करने के लिए एक बड़ी पूंजी की जरूरत होती है, लेकिन पूंजी कहाँ से आए, यह एक बड़ी समस्या है। ‘रेड जोन’ उपन्यास में गुरुजी के मन के उद्गार द्रष्टव्य हैं - “कंपनी के एमडी को काबू में करना पड़ेगा। यहाँ के विस्थापितों को एक बार फिर से संगठित कर उनके हक के लिए लड़ना पड़ेगा। पार्टी को मजबूत करना पड़ेगा। उन्हीं के नियमों से खेल कर उन्हें पराजित करना पड़ेगा। और इन सबके लिए चाहिए ढेर सारे पैसे। मगर कैसे?”²⁵ कहने का अभिप्राय यह है कि एक आंदोलन को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी की आवश्यकता होती है। गुरुजी आदिवासियों का विश्वास पुनः अर्जित करना चाहते थे, किन्तु धन के अभाव में यह कठिन प्रतीत हो रहा था।

भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त है। राजनीति में भ्रष्टाचार का एक व्यापक स्वरूप देखने को मिलता है। भ्रष्ट नेताओं की वजह से ही अपराधियों को बढ़ावा मिलता है। ये अपना स्वार्थ साधने के लिए इतनी सहायता लेते हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपनी पार्टी को जिताने के लिए इन्हें चुनाव में खड़ा करते हैं। इसी कारण जनता का वोट इन्हें मिल जाता है। आदिवासी नेता जनता की समस्याओं की बात करते हैं, उन पर किए जा रहे अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते हैं, लेकिन जब वे राजनीति में आते हैं या राजनीतिक पार्टी से जुड़ते हैं तो वे भी उसी अनुरूप बन जाते हैं या बना दिये जाते हैं। जनता का समर्थन मिलने के कारण ही वे एम.एल.ए. या अन्य पदवी प्राप्त कर लेते हैं। यह समस्या पूरे देश के राजनीति की है। 'रेड जोन' उपन्यास में मानव चारु को इस भ्रष्ट समाज के बारे में बताता है - "पहले राजनीतिक लोग अपराधियों की मदद लेते थे चुनाव जीतने के लिए। अब अपराधी ही चुनाव लड़ रहे हैं। विधानसभा और संसद में अपराधी चरित्र वाले जन प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती जा रही है। गुरुजी की पार्टी के कई नेता किसी जमाने में वैगन ब्रोकर थे। कोयलांचल के सबसे बड़े माफिया जनता पार्टी को चलाते हैं। क्या-क्या तुम्हें बताऊँ?"²⁶

राजनीति में सत्ता का बहुत अधिक बोलबाला है। सत्ता पाने के लिए लोग कुछ भी कर सकते हैं। सत्ता का आदिवासियों से कोई सरोकार नहीं है। जबकि झारखंड राज्य आदिवासी बहुल इलाका है। इसके बावजूद आदिवासियों के योगदानों की कहीं भी चर्चा नहीं है। प्रत्येक वर्ग के लिए सीट आरक्षित किए गए हैं। जो भी व्यक्ति आरक्षित सीट से जीतकर राजनीति में शामिल होते हैं वे चाहे आदिवासी हो या अन्य वर्ग के लोग, सभी उसी राजनीतिक पार्टी का हिस्सा बन जाते हैं और उसी अनुसार कार्य करने लग जाते हैं। जो भी आदिवासी जननायक देश के संसद के सदस्य और विधायक बन जाते हैं और साथ ही राष्ट्रीय दलों से भी जुड़ जाते हैं, वे भी अपनी ही पार्टी के लोगों के दुर्व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर पाते हैं और उन्हें प्रसन्न रखने का हरसंभव प्रयत्न करते हैं जिससे चुनाव में खड़े होने के लिए फिर से उनका समर्थन प्राप्त हो जाए। आदिवासियों को अपनी समस्या के निवारण के लिए राजनीतिक पार्टी

में शामिल अपने ही नेता का समर्थन प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् इन लोगों ने समस्या के निवारण के लिए हड़ताल की, धरना दिया, परंतु इस मामले में नेताओं का सहयोग नहीं मिला। झारखंड एक अलग राज्य बनने के बाद भी स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। 'रेड जोन' उपन्यास में लेखक ने बताया है - "सरकार बदलने से भी सत्ता का मूल चरित्र नहीं बदलता। सत्ता में जो भी आये, वह मुट्ठी भर लोगों के हित साधने का काम करता है और विशाल आबादी को अपने जूते के तल्ले से दबाये रखता है। लोकतंत्र और विधि के शासन के नाम पर शोषण, अत्याचार और विषमता पर आधारित इस व्यवस्था को बनाए रखना उनका काम है। कोर्ट-कचहरी, पुलिस-फौज सभी इसी अन्यायमूलक व्यवस्था को बनाये रखने में उनकी मदद के लिए है।"²⁷ कहने का अभिप्राय यह है कि अगर सत्ता में बने रहना है तो उस वातावरण में ढलना जरूरी है तभी वह स्वयं को और दूसरे को भी सुरक्षित रख सकता है। कई बार उनकी ही नीतियाँ अपनाती पड़ती हैं। अनेक बार ऐसी स्थिति सामने आ जाती है कि गरीब मजदूरों का साथ न देकर पार्टी का साथ देना पड़ता है।

सरकार ने आदिवासियों की भलाई के लिए विकास संबंधी योजनाएँ निर्धारित की जो आदिवासियों के हित में नहीं रहा। साथ ही सरकार ने बिना उनकी अनुमति के योजनाओं को लागू किया और आदिवासी उन नियमों का पालन करते रहे। जैसे कि सरकार ने जंगल से लकड़ी काटने पर प्रतिबंध लगा दिया, किन्तु मुख्यधारा समाज के लोग बिना किसी रोक-टोक के जंगल में आ-जा रहे हैं और लकड़ियों को काट कर सस्ते दामों में बेच रहे हैं। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं है। आदिवासी, जो प्रकृति के संरक्षक और सर्वेसर्वा रहे हैं, पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए जा रहे हैं। 'रेड जोन' उपन्यास में इस प्रसंग पर चर्चा की गई है, "जिस देश की आधी से अधिक आबादी झोपड़पट्टियों में, महानगर के फुटपार्थों पर रहती है, उस देश का राष्ट्रपति सैकड़ों कमरों वाले महल में रहता है। जनप्रतिनिधि आलीशान बंगलों में रहते हैं। सोचो जरा यह कैसा लोकतन्त्र है। तुम्हें तो जानकारी होगी कि जंगल अब सरकार का है। तुम्हारे घर के आँगन में उगने वाला बीड़ी पत्ता भी सरकार की मिल्कियत।"²⁸ कहने का अभिप्राय

यह है कि नेतृत्वकर्ताओं ने आदिवासियों के बीच अधिकारों को लेकर जागरूकता फैलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया ताकि अब तक जिन अधिकारों से उन्हें वंचित रखा गया उसके प्रति सचेत हो सके और जब उनके द्वारा किए गए जन आंदोलन व्यापक रूप धारण करने लगा तो उनके आंदोलन के बढ़ते कदम को रोकने का भरपूर प्रयास किया गया।

आदिवासियों ने अपने अधिकारों के लिए बहुत संघर्ष किया। लेकिन उनका संघर्ष अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। इसके पीछे मुख्य कारण उनका धनाभाव है। दूसरा कारण है समय के अभाव का होना। संघर्ष को जारी रखने के लिए इन दोनों की आवश्यकता होती है। इसके न होने के कारण संघर्ष शिथिल पड़ जाता है। संघर्ष चलाने के लिए ऐसे लोगों के सहयोग की भी आवश्यकता होती है जो आर्थिक रूप से मजबूत हो। कुछ आदिवासी आर्थिक रूप से मजबूत होने के बावजूद संघर्ष में अपना सहयोग नहीं देते और न ही आर्थिक रूप से सहायता ही करते हैं। शहरों में बसने के कारण वे अपने समाज और संस्कृति से कटे-कटे रहते हैं। शहरी संस्कृति, तौर-तरीकों को अपनाने के कारण सामूहिक जीवन-दर्शन से कोसों दूर हो गए हैं और उसके स्थान पर वैयक्तिक जीवन-दर्शन को अपना लिया है। समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को महत्व देने के कारण अपने समाज की समस्याओं के प्रति विरक्ति भाव को दर्शाते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि धीरे-धीरे आदिवासियों के आंदोलन का कार्यभार मुख्यधारा के समाज के लोगों पर आ जाता है।

मीडिया को चौथा स्तम्भ माना जाता है। किसी भी मुद्दे को क्षेत्र से निकालकर राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाने में मीडिया की अहम भूमिका होती है। लेकिन गैर आदिवासी नजरिए से संचालित होने के कारण आदिवासी मसला क्षेत्रीय स्तर तक ही सीमित रह जाता है, राष्ट्रीय रूप नहीं मिल पाता है। आदिवासियों के प्रति सकारात्मक विचार के अभाव में महत्वपूर्ण मसलों को प्रकाशित नहीं किया जाता है।

क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के गठबंधन ने आदिवासी मामलों को राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचने ही नहीं दिया। राष्ट्रीय दल आदिवासियों की मूलभूत समस्याओं को गौण समझते हैं। 'रेड जोन' उपन्यास में लेखक ने बताया है कि गुरुजी अपनी पार्टी को जिताने के लिए जी-तोड़ मेहनत करते हैं और जनता का वोट इकट्ठा करते हैं, लेकिन उसी पार्टी के लोग उनके साथ छल करते हैं। इस संदर्भ में एक प्रसंग द्रष्टव्य है- "विनोद बाबू से मुझे अब भी कोई शिकायत नहीं। उन्हें लगता है कि मैं काँग्रेस के करीब चला गया हूँ। जहां तक राय बाबू की बात है तो कम्युनिस्ट किसी का हुआ है? एमरजेंसी के बाद मैं टुंडी से चुनाव लड़ने उतरा तो उन्होंने अपनी पाकेट पार्टी की टिकट पर संगठन के ही एक साथी शक्ति महतो को उसी सीट पर खड़ा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हम दोनों चुनाव हार गए और भाजपा का आदमी पहली बार कोयलांचल की एक सीट जीत गया।"²⁹ तत्पश्चात् मानव के सवाल-जवाब में उन्होंने राजनीति के वास्तविक रूप का खुलासा करते हुए बताया कि, "उन्होंने 'लाल और हरे झंडे की मैत्री' का नारा दिया था। इसका अर्थ बाद में खुला। वे चाहते थे हम उनके लिए वोट जुटाएँ और वे अपने लोगों को चुनाव में खड़ा करें, राजनीति करें। आदिवासी को सभी बेवकूफ समझता है। यह कब तक चलता? हमने अपना रास्ता उनसे अलग कर लिया। वे विनोद बाबू को बहका कर हमारे खिलाफ राजनीति करते हैं।"³⁰

जब भी कोई आदिवासी नेता संसदीय लोकतंत्र का हिस्सा बनता है तो उनको संसदीय लोकतंत्र के व्यवहार को अपनाने की विवशता होती है। पर वास्तव में यह विवशता संसदीयकरण का न होकर आदिवासी अस्मिता के पक्ष में प्रतिनिधित्व स्वर उभारने का है। प्रसिद्ध लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता विनोद कुमार ने अपने उपन्यास 'रेड जोन' में यह बताया है, "समीप ही एक आवासीय कॉलोनी बन रही थी। सैकड़ों मजदूर उस काम में लगे हुए थे। कालीचरण के माता-पिता भी वहाँ काम करते थे। एक दिन भीषण दुर्घटना हो गई। जिस खंदक में वे अन्य मजदूरों के साथ काम कर रहे थे, उसके बगल में जमा मिट्टी का पहाड़ ढह कर खंदक में भर गया और कई रेजा-कुलियों के साथ कालीचरण के पिता भी मिट्टी के उस ढेर में जीते जी

दफन हो गए। कई दिनों तक काम ठप रहा। मृतकों के परिजन मुआवजे और नौकरी की माँग करते रहे। लेकिन प्रबंधन ने यह कह कर पल्ला झाड़ लिया कि यह काम ठेकेदार करवा रहा है और मुआवजा वही देगा।³¹ इस संबंध में गुरुजी उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि वे प्रबंधन से बातचीत करेंगे, अगर कुछ नहीं हो पाया तो आंदोलन होगा। पर कालीचरण गुरुजी के आवास पर ठेकेदारों को उनके इर्द-गिर्द देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है और तभी से उसका गुरुजी पर से भरोसा कम हो गया।

आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। भारत में रहने वालों की इतनी आबादी है कि प्रत्येक व्यक्ति के वोट का बहुत मूल्य है। इसलिए आवश्यकता है अपने वोट के ताकत को समझने की। आदिवासी इस तथ्य से अनजान है और इस तथ्य के प्रति जागरूक और सचेत होने की जरूरत है ताकि वे ऐसे व्यक्ति को वोट दे, जो उनकी समस्याओं को सुने, समझे और हल निकाले। अर्थात् उनके विकास के बारे में सोचे।

राष्ट्रीय दलों के पास आदिवासियों का कोई एजेंडा नहीं है और न ही उनके नेताओं के पास राष्ट्रीय आदिवासी विचारधारा है। लोकतंत्र बहुमत से चलता है। आदिवासी जनान्दोलन में तो जीत जाते हैं, लेकिन बहुमत के आधार पर चलने वाली चुनाव प्रणाली में वे हारने लगते हैं। वे वोट की संख्यागत राजनीति में पिछड़ जाते हैं। आदिवासियों के लिए आरक्षित क्षेत्र में भी गैर आदिवासियों की संख्या आदिवासियों से कहीं अधिक है। आदिवासियों के लिए आरक्षित सीटों पर चुने हुए उम्मीदवारों का गैर-आदिवासियों के समर्थन के बिना जीतना संभव नहीं है। आदिवासी राजनीति में, क्षेत्रीय राजनीति में पहचान की जो लड़ाई होती है वह उनके लिए जरूरी है। लेकिन जब बाहरी लोग यहाँ आकर बसते हैं तो वे राष्ट्रीय पार्टी के समर्थक हो जाते हैं। भीतरी और बाहरी का एक द्वंद्व रहता है। क्षेत्रीय पार्टियाँ तात्कालिक लाभ के लिए उसे उभारने की कोशिश भी करती हैं, यह उनकी मजबूरी है। इस संदर्भ में 'रेड जोन' उपन्यास से एक प्रसंग देखा जा सकता है - "दादा के वोट बैंक का बड़ा हिस्सा तो गैर-आदिवासी आबादी ही थी। शहर की कुल आबादी का एक छोटा-सा हिस्सा ही आदिवासी विस्थापित रह गए थे, इसलिए अपने

भाषणों में विस्थापितों, आदिवासियों के लिए घड़ियाली आँसू बहाने वाले अधिकतर राजनीतिक दल इस मुद्दे से किनारा कर तमाशबीन बन गए थे।³²

आदिवासियों के अधिकारों और उनकी भलाई के बारे में विचार रखने तथा आवाज उठाने वाले को राष्ट्रीय दल अपनी पार्टी में सम्मिलित नहीं करते हैं। वे उन्हीं को पार्टी में मिलाते हैं जो उनके हर कार्यों में साथ दे और उनका विरोध न करे। 'रेड जोन' उपन्यास में कालीचरण जैसे आदिवासी व्यक्ति भी चित्रित है जिसने ईमानदारी से विस्थापितों के लिए मुआवजे और पुनर्वास जैसी मुख्य समस्या को सभी के बीच उठाने का प्रयास किया, लेकिन उसके द्वारा उठाए गए मुद्दों पर किसी प्रकार का विचार-विमर्श नहीं किया गया। आदिवासियों के हित के बारे में सोचने वाले और आवाज उठाने वाले व्यक्ति को राजनीतिक दलों के लोग अपनी पार्टी में सम्मिलित नहीं करते हैं। वे ऐसे लोगों को चुनाव में खड़ा करते हैं जिनसे उनके स्वार्थ की पूर्ति हो सके और उनके अनुसार कार्य करते जाए।

आदिवासी नेताओं की अस्मिता और उनका अस्तित्व क्षेत्रीय स्तर तक सीमित रहने के कारण आदिवासियों की समस्या राष्ट्रीय स्तर तक नहीं पहुँच पाई। एक कारण यह भी था कि आदिवासियों को हीन और पिछड़ा समझने के कारण उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया। यह ध्यान देने की बात है कि आदिवासी नेताओं का राष्ट्रीय पैमाने तक पहुँचना अत्यंत आवश्यक होता है तभी वह अपने समुदाय की समस्याओं को व्यापक रूप देने में समर्थ हो सकता है और उनका राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचना बहुत महत्व रखता है अर्थात् किसी भी समस्या को राष्ट्रीय पैमाने का रूप देने के लिए नेताओं का पहुँचना जरूरी हो जाता है। लेकिन ऐसा नहीं हो पाया क्योंकि राष्ट्रीय दलों ने वहाँ तक पहुँचने ही नहीं दिया। अन्य पिछड़ी जातियों को अपने आत्मसम्मान, स्वाभिमान के बल पर सुलह या समझौता करना गंवारा नहीं, लेकिन जिन आदिवासी नेताओं ने अपने समुदाय के हक के लिए लड़ाइयाँ की, अंत में उन्होंने राष्ट्रीय दल के साथ सुलह कर लिया। जयपाल सिंह मुंडा जैसे महान जननायक ने आदिवासियों की भलाई के लिए, उनकी समस्याओं को राष्ट्रीय फलक तक पहुँचाने के लिए राष्ट्रीय दलों में सम्मिलित

तो हो गए पर उनका झारखंड अलग राज्य बनने का स्वप्न अधूरा ही रह गया। इस स्वप्न को गुरुजी ने साकार किया। कांग्रेस पार्टी की सभी शर्तों को माना पर अपनी पार्टी को उनकी पार्टी में मिलाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और उन्हीं के बीच रहकर या यों कहें कि पार्टी में शामिल होकर गुरुजी ने इस स्वप्न को साकार तो किया, पर अपनों का साथ और विश्वास खो दिया। “कुछ वर्षों तक सब कुछ ठीक चला। गाँव में कैंप लगाकर महाजनों के कब्जे वाली जमीन पर आदिवासियों का हक दिलाया गया। बीस सूत्री कार्यक्रम के तहत गाँवों में कुएँ-तालाब बने, इंदिरा आवास बने, चापाकल लगे, राशन की दुकानें खुली। लेकिन इस समझौते की बड़ी कीमत गुरुजी को चुकानी पड़ी। अपनों का विश्वास खोया। विनोद बाबू का साथ खोया। राय बाबू से अलग होना पड़ा। गुरुजी ने सोचा, राय बाबू से अलग होने का क्या गम। कम्युनिस्ट भला किसी के हुए हैं जो मेरे होते?”³³

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदिवासी जनप्रतिनिधि क्षेत्रीय राजनीति से उठकर राष्ट्रीय राजनीति तक अपनी पहचान निर्मित करने में पीछे रह जा रहे हैं और आदिवासी मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दे होते हुए भी राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित नहीं हो पाते हैं। आदिवासी शासन व्यवस्था सर्वमत पर आधारित रही है जबकि देश की शासन व्यवस्था बहुमत पर आधारित है। दो भिन्न प्रकार की व्यवस्था में यह एक बड़ा फर्क है। एकता में बड़ी ताकत होती है। समस्त वंचित समुदाय एक हो जाए तो निश्चित ही एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिल सकता है।

संदर्भ:

-
- ¹ अनुराग, फैसल (संपा.), घनश्याम, सुनील मिंज, झारखंड में सुशासन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2016, पृष्ठ: 8
 - ² वही, पृष्ठ: 15
 - ³ वही, पृष्ठ: 16
 - ⁴ Roy, Sarat Chandra, The Mundas and Their Country, The Kuntaline Press, Calcutta, 1912, Pg- 120-121
 - ⁵ पंकज, अश्विनी कुमार, पाँचवीं-छठी अनुसूची और आदिवासी स्वशासन संघर्ष, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, पहला संस्करण: 2022, पृष्ठ: 15
 - ⁶ वही, पृष्ठ: 17-18
 - ⁷ अनुराग, फैसल (संपा.), घनश्याम, सुनील मिंज, झारखंड में सुशासन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 2016, पृष्ठ: 35
 - ⁸ वही, पृष्ठ: 36
 - ⁹ लुगुन, अनुज (संपा.), आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2018, पृष्ठ: v
 - ¹⁰ सिंह, राकेश कुमार, हुल पहाड़िया, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण: प्रथम 2012, पृष्ठ: 126
 - ¹¹ वही, पृष्ठ: 132
 - ¹² सिंह, राकेश कुमार, जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पहला संस्करण: 2005, पृष्ठ: 133
 - ¹³ वही, पृष्ठ: 150-151
 - ¹⁴ मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, हरियाणा, तृतीय संस्करण: 2014, पृष्ठ: 48
 - ¹⁵ कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण: 2005, पृष्ठ: 17
 - ¹⁶ वही, पृष्ठ: 43
 - ¹⁷ वही, पृष्ठ: 87
 - ¹⁸ वही, पृष्ठ: 104
 - ¹⁹ वही, पृष्ठ: 108

²⁰ वही, पृष्ठ: 108

²¹ वही, पृष्ठ: 117

²² वही, पृष्ठ: 295

²³ कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015, पृष्ठ: 127

²⁴ वही, पृष्ठ: 83

²⁵ वही, पृष्ठ: 25

²⁶ वही, पृष्ठ: 79

²⁷ वही, पृष्ठ: 127-128

²⁸ वही, पृष्ठ: 128

²⁹ वही, पृष्ठ: 28

³⁰ वही, पृष्ठ: 28-29

³¹ वही, पृष्ठ: 21

³² वही, पृष्ठ: 83

³³ वही, पृष्ठ: 25